विचारों की अपार और अद्भुत शक्ति

लेखक
आचार्य श्रीराम शर्मा

युग-निर्माण योजना
गायत्री तपोभूमि
मथुरा।

प्रकाशक
युग निर्माण योजना
गायत्री तपोभूमि, मथुरा।

लेखक
आचार्य श्रीराम शर्मा

प्रथम संस्करण
१९७२

मुद्रक—
युग निर्माण योजना प्रेस
गायत्री तपोभूमि
मथुरा

मूल्य
दो रुपया

विषय-सूची

दो शब्द

विचारों की शक्ति बहुत अधिक है। यद्यपि अधिकांश लोगों को विचार कोरी कल्पना मात्र जान पड़ते हैं और बहुत से तो उनको गप-शप की तरह ही मानते हैं, पर इसका कारण यही है कि उन्होंने कभी इस विषय में गम्भीरता से विचार नहीं किया। सच पूछा जाय तो यह संसार विचारों का ही प्रतिरूप है। विचार सूक्ष्म होते हैं और संसार के पदार्थ तथा वस्तुएँ स्थूल, पर उनकी सृष्टि रचना पहले किये गये विचार के अनुसार ही होती है। दर्शन शास्त्र के अनुसार तो यह समस्त जगत ही परमात्मा के इस विचार का परिणाम है कि 'एकोहं बहुस्यामि' (मैं एक से बहुत हो जाऊँ)। पर यदि हम इतनी दूर न जायें तो हमको अपने सामने जो कुछ उन्नति, प्रगति, नये-नये परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं वे सब विचारों के ही परिणाम हैं। बड़े से बड़े महल, मन्दिर, मूर्तियाँ, रेल-तार, जहाज, रेडियो आदि अद्भुत आविष्कार उनके बनाने वालों के विचारों के ही फल होते हैं। उनके कर्ताओं के मन में पहले उन वस्तुओं के बनाने का विचार आया, फिर वे उस पर लगातार चिन्तन और खोज करते गये और अन्त में वही विचार कार्य रूप में प्रकट हुआ।

इस पुस्तक में बतलाया है कि मनुष्य यदि झूठी-मूठी कल्पनायें करने के बजाय गम्भीरता पूर्वक विचार करे और उसे पूरा करने के लिये सच्चे हृदय से प्रयत्न करे तो वह जैसा चाहे वैसी उन्नति कर सकता है, जितना चाहे उतना ऊँचा उठ सकता है, जो कुछ बड़े से बड़ा काम चाहे करके दिखा सकता है। हम पिछले सौ-पचास वर्ष में ही भिखारियों को सम्राट, और दो पैसे की मजदूरी करने वालों को धनकुबेर बनते देख चुके हैं, फिर कोई कारण नहीं कि हम विचार, हार्दिक संकल्प करके हम उतने ही ऊँचे न उठ सकें। आवश्यकता अपने विचारों के प्रति सच्चा होने की ही है।

—प्रकाशक

विचारों की अपार और अद्भुत शक्ति
विचार शक्ति ही सर्वोपरि है

शारीरिक, सामाजिक, राजनीतिक और सैनिक—संसार में बहुत प्रकार की शक्तियाँ विद्यमान हैं। किन्तु इन सब शक्तियों से भी बढ़कर एक शक्ति है, जिसे विचार-शक्ति कहते हैं। विचार-शक्ति सर्वोपरि है।

उसका एक मोटा-सा कारण तो यह है कि विचार-शक्ति निराकार और सूक्ष्मातिसूक्ष्म होती है और अन्य शक्तियाँ स्थूलतर। स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म में अनेक गुना शक्ति अधिक होती है। पानी की अपेक्षा वाष्प और उससे उत्पन्न होने वाली बिजली बहुत शक्तिशाली होती है। जो वस्तु स्थूल से सूक्ष्म की ओर जितनी बढ़ती जाती है, उसकी शक्ति भी उसी अनुपात से बढ़ती जाती है।

मनुष्य जब स्थूल शरीर से सूक्ष्म, सूक्ष्म से कारण-शरीर, कारण-शरीर से आत्मा, और आत्मा से परमात्मा की ओर ज्यों-ज्यों बढ़ता है, उसकी शक्ति की उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है। यहाँ तक कि अन्तिम कोटि में पहुँच कर वह सर्वशक्तिमान बन जाता है। विचार सूक्ष्म होने के कारण संसार के अन्य किसी भी साधन से अधिक शक्तिशाली होते हैं। उदाहरण के लिये हम विभिन्न धर्मों के पौराणिक आख्यानों की ओर जा सकते हैं।

बहुत बार किसी ऋषि, मुनि और महात्मा ने अपने शाप और वरदान द्वारा अनेक मनुष्यों का जीवन बदल दिया। ईसाई धर्म के प्रवर्तक ईसा-मसीह के विषय में प्रसिद्ध है कि उन्होंने न जाने कितने अपङ्गों, रोगियों और मरणासन्न व्यक्तियों को पूरी तरह केवल आशीर्वाद देकर ही भला-चंगा कर दिया। विश्वामित्र ऐसे ऋषियों ने अपनी विचार एवं संकल्प शक्ति से दूसरे संसार

की ही रचना प्रारम्भ कर दी थी । और इस विश्व ब्रह्माण्ड की, जिसमें हम रह रहे हैं, रचना भी ईश्वर के विचार-स्फुरण का ही परिणाम है।

ईश्वर के मन में 'एकोऽहं बहुस्यामि' का विचार आते ही यह सारी जड़ चेतनमय सृष्टि बनकर तैयार हो गई, और आज भी वह उसकी विचार-धारणा के आधार पर ही स्थित है और प्रलयकाल में विचार निर्धारण के आधार पर ही उसी ईश्वर में लीन हो जायेगी। विचारों में सृजनात्मक और ध्वंसात्मक दोनों प्रकार की अपूर्व, सर्वोपरि और अनन्त शक्ति होती है । जो इस रहस्य को जान जाता है, वह मानो जीवन के एक गहरे रहस्य को प्राप्त कर लेता है। विचारणाओं का चयन करना स्थूल मनुष्य की सबसे बड़ी बुद्धिमानी है। उनकी पहचान के साथ जिसको उसके प्रयोग की विधि विदित हो जाती है, वह संसार का कोई भी अभीष्ट सरलतापूर्वक पा सकता है ।

संसार की प्रायः सभी शक्तियाँ जड़ होती हैं. विचार-शक्ति, चेतन-शक्ति है । उदाहरण के लिए धन अथवा जन-शक्ति ले लीजिये । अपार धन उपस्थित हो किन्तु समुचित प्रयोग करने वाला कोई विचारवान् व्यक्ति न हो तो उस धनराशि से कोई भी काम नहीं किया जा सकता । जन-शक्ति और सैनिक-शक्ति अपने आप में कुछ भी नहीं है। जब कोई विचारवान् नेता अथवा नायक उसका ठीक से नियन्त्रण और अनुशासन कर उसे उचित दिशा में लगाता है, तभी वह कुछ उपयोगी हो पाती है अन्यथा वह सारी शक्ति भेड़ों के गल्ले के समान निरर्थक रहती है । शासन, प्रशासन और, व्यावसायिक सारे काम एक मात्र विचार द्वारा ही नियन्त्रित और संचालित होते हैं । भौतिक क्षेत्र में ही नहीं उससे आगे बढ़कर आत्मिक क्षेत्र में भी एक विचार-शक्ति ही ऐसी है, जो काम आती है । न शारीरिक और न साम्पत्तिक कोई अन्य-शक्ति काम नहीं आती । इस प्रकार जीवन तथा जीवन के हर क्षेत्र में केवल विचार-शक्ति का ही साम्राज्य रहता है ।

किन्तु मनुष्य की सभी मानसिक तथा बौद्धिक स्फुरणायें विचार ही नहीं होते । उनमें से कुछ विचार और कुछ मनोविकार तथा बौद्धिक विलास भी होता है । दुष्टता, अपराध तथा ईर्ष्या-द्वेष के मनोभाव, विकार तथा मनो-

रंजन, हास-विलास तथा क्रीड़ा आदि की स्फुरणाएँ बौद्धिक विलास मानी गई हैं। केवल मानसिक स्फुरणाएँ ही विचारणीय होती हैं, जिनके पीछे किसी सृजन, किसी उपकार अथवा किसी उन्नति की प्रेरणा क्रियाशील रहती है। साधारण तथा सामान्य गतिविधि के संकल्प-विकल्प अथवा मानसिक प्रेरणायें विचार की कोटि में नहीं आती हैं। वे तो मनुष्य की स्वाभाविक वृत्तियाँ होती हैं, जो मस्तिष्क में निरन्तर आती रहती हैं।

यों तो सामान्यतया विचारों में कोई विशेष स्थायित्व नहीं होता। वे जल-तरङ्गों की भाँति मानस में उठते और विलीन होते रहते हैं। दिन में न जाने कितने विचार मानव-मस्तिष्क में उठते और मिटते रहते हैं। चेतन होने के कारण मानव मस्तिष्क की यह प्राकृतिक प्रक्रिया है। विचार वे ही स्थायी बनते हैं, जिनसे मनुष्य का रागात्मक सम्बन्ध हो जाता है। बहुत से विचारों में से एक दो विचार ऐसे होते हैं, जो मनुष्य को सबसे ज्यादा प्यारे होते हैं। वह उन्हें छोड़ने की बात तो दूर उनको छोड़ने की कल्पना तक नहीं कर सकता।

यही नहीं, किसी विचार अथवा विचारों के प्रति मनुष्य का रागात्मक झुकाव विचार को न केवल स्थायी अपितु अधिक प्रखर तेजस्वी बना देता है। इन विचारों की छाप मनुष्य के व्यक्तित्व तथा कर्तृत्व पर गहराई के साथ पड़ती है। रागात्मक विचार निरन्तर मथित अथवा चिन्तित होकर इतने दृढ़ और अपरिवर्तनशील हो जाते हैं कि वे मनुष्य के विषय व्यक्तित्व के अभिन्न अङ्ग की भाँति दूर से ही झलकने लगते हैं। प्रत्येक विचार जो इस सम्बन्ध से संस्कार बन जाता है, वह उसकी क्रियाओं में अनायास ही अभिव्यक्त होने लगता है।

अतएव आवश्यक है कि किसी विचार से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने से पूर्व इस बात की पूरी परख कर लेनी चाहिए कि जिसे हम विचार समझकर अपने व्यक्तित्व का अङ्ग बनाये ले रहे हैं, वह वास्तव में विचार है भी या नहीं? कहीं ऐसा न हो कि वह आपका कोई मनोविकार हो और तब आपका व्यक्तित्व उसके कारण दोषपूर्ण बन जाय प्रत्येक शुभ तथा सृजनात्मक

विचार व्यक्तित्व को उभारने और विकसित करने वाला होता है और प्रत्येक अशुभ और ध्वंसात्मक विचार मनुष्य का जीवन गिरा देने वाला है ।

विचार का चरित्र से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है । जिसके विचार जिस स्तर के होंगे, उसका चरित्र भी उसी कोटि का होगा । जिसके विचार क्रोध प्रधान होंगे वह चरित्र से भी लड़ाकू और झगड़ालू होगा, जिसके विचार कामुक और स्त्रैण होंगे, उसका चरित्र वासनाओं और विषय-भोग की जीती जागती तस्वीर ही मिलेगा । विचारों के अनुरूप ही चरित्र का निर्माण होता है । यह प्रकृति का अटल नियम है । चरित्र मनुष्य की सबसे मूल्यवान् सम्पत्ति है । उससे ही सम्मान, प्रतिष्ठा, विश्वास और श्रद्धा की प्राप्ति होती है । वही मानसिक और शारीरिक शक्ति का मूल आधार है । चरित्र की उच्चता ही उच्च जीवन का मार्ग निर्धारित करती है और उस पर चल सकने की क्षमता दिया करती है ।

निम्नाचरण के व्यक्ति समाज में नीची दृष्टि से ही देखे जाते हैं । उनकी गतिविधि अधिकतर समाज विरोधी ही रहती है । अनुशासन और मर्यादा जो कि वैयक्तिक से लेकर राष्ट्रीय-जीवन तक की दृढ़ता की आधार-शिला है, निम्नाचरण व्यक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं रखती है । आचरणहीन व्यक्ति और एक साधारण पशु के जीवन में कोई विशेष अन्तर नहीं होता । जिसने अपनी यह बहुमूल्य सम्पत्ति खो दी उसने मानो सब कुछ खो दिया । सब कुछ पा लेने पर भी चरित्र का अभाव मनुष्य को आजीवन दरिद्री ही बनाये रखता है ।

मनुष्यों से भरी इस दुनियाँ में अधिकांश संख्या ऐसों की ही है, जिन्हें एक तरह से अर्ध मनुष्य ही कहा जा सकता है । वे कुछ ही प्रवृत्तियों और कार्यों में पशुओं से भिन्न होते हैं, अन्यथा वे एक प्रकार से मानव-पशु ही होते हैं । इसके विपरीत कुछ मनुष्य बड़े ही सभ्य, शिष्ट और शालीन होते हैं । उनकी दुनिया सुन्दर और कला-प्रिय होती है । इसके आगे भी एक श्रेणी चली गई है, जिनको महापुरुष, ऋषि-मुनि और देवता कह सकते हैं । समान हाथ, पैर और मुँह, नाक, कान के होते हुए भी और एक ही वातावरण में रहते

मनुष्यों में यह अन्तर क्यों दिखलाई देता है ? इसका आधारभूत कारण विचार ही माने गये हैं । जिस मनुष्य के विचार जिस अनुपात में जितने अधिक विकसित होते चले जाते हैं, उसका स्तर पशुता से उसी अनुपात से श्रेष्ठता की ओर बढ़ता चला जाता है । असुरत्व, पशुत्व, ऋषित्व अथवा देवत्व और कुछ नहीं, विचारों के ही स्तरों के नाम हैं । यह विचार-शक्ति ही है, जो मनुष्य को देवता अथवा राक्षस बना सकती है ।

संसार में उन्नति करने के लिये धन, अवसर आदि बहुत से साधन माने जाते हैं । किन्तु एक विचार-साधन ऐसा है, जिसके द्वारा बिना किसी व्यय के मनुष्य अनायास ही उन्नति करता जा सकता है । मनुष्य के विचार परमार्थ-परक, परोपकारी और सेवापूर्ण हों तो समाज में उसे उन्नति करने के लिये किन्हीं अन्य साधनों की आवश्यकता नहीं रहती । विचारों द्वारा मनुष्य बहुत बड़े समुदाय को प्रभावित कर अपने अनुकूल कर सकता है । साधनपूर्ण व्यक्तियों को अपनी ओर आकर्षित कर सकता है । विचारों की विशालता मनुष्य को विशाल और उनकी निकृष्टता निकृष्ट बना देती है । विचार सम्पत्ति से भरे-भरे व्यक्तित्व को उन्नति करने के लिये किन्हीं अन्य उपकरणों, उपादानों और साधनों की अपेक्षा नहीं रहती । अकेले विचारों के बल पर ही वह जितनी चाहे उन्नति करता जा सकता है ।

मन और मस्तिष्क, जो मानव-शक्ति के अजस्र स्रोत माने जाते हैं और जो वास्तव में हैं भी, उनका प्रशिक्षण विचारों द्वारा ही होता है । विचारों की धारणा और उनका निरन्तर मनन करते रहना मस्तिष्क का प्रशिक्षण कहा गया है । उदाहरण के लिये जब कोई व्यक्ति अपने मस्तिष्क में कोई विचार रखकर उसका निरन्तर चिन्तन एवं मनन करता रहता है, वे विचार अपने अनुरूप मस्तिष्क में रेखायें बना देते हैं, ऐसी प्रणालियाँ तैयार कर दिया करते हैं कि मस्तिष्क की गति उन्हीं प्रणालियों के बीच ही उसी प्रकार बंध कर चलती है, जिस प्रकार नदी की धार अपने दोनों कूलों से मर्यादित होकर । यदि दूषित विचारों को लेकर मस्तिष्क में मन्थन किया जायेगा, तो मस्तिष्क की धारायें दूषित हो जायेंगी, उनकी दिशा विकारों की ओर निश्चित हो

जायेगी और उसकी गति दोषों के सिवाय गुणों की ओर न जा सकेगी । इसी प्रकार जो बुद्धिमान मस्तिष्क में परोपकारी और परमार्थी विचारों का मनन करता रहता है, उसका मस्तिष्क परोपकारी और परमार्थी बन जाता है और उसकी धारायें निरन्तर कल्याणकारी दिशा में ही चलती रहती हैं।

इस प्रकार इस में कोई संशय नहीं रह जाता कि विचारों की शक्ति अपार है, विचार ही संसार की धारणा के आधार और मनुष्य के उत्थान-पतन के कारण होते हैं। विचारों द्वारा प्रशिक्षण देकर मस्तिष्क को किसी ओर मोड़ा और लगाया जा सकता है। अस्तु बुद्धिमानी इसी में है कि मनुष्य मनोविकारों और बौद्धिक स्फुरणाओं में से वास्तविक विचार चुन ले और निरन्तर उनका चिन्तन एवं मनन करते हुए, मस्तिष्क का परिष्कार कर डाले। इस अभ्यास से कोई भी कितना ही बुद्धिमान्, परोपकारी, परमार्थी और मुनि, मानव या देवता का विस्तार पा सकता है।

विचारों का महत्व और प्रभुत्व

मनुष्य के हर विचार का एक निश्चित मूल्य तथा प्रभाव होता है। यह बात रसायन-शास्त्र के नियमों की तरह प्रामाणिक है। सफलता, असफलता संपर्क में आने वाले दूसरे लोगों से मिलने वाले सुख-दुःख का आधार विचार ही माने गये हैं। विचारों को जिस दिशा में उन्मुख किया जाता है, उस दिशा के तदनुकूल तत्व आकर्षित होकर मानव मस्तिष्क में एकत्र हो जाते हैं।

सारी सृष्टि में एक सर्वव्यापी जीवन-तरङ्ग आन्दोलित हो रही है। प्रत्येक मनुष्य के विचार उस तरङ्ग में सब ओर प्रवाहित होते रहते हैं, जो उस तरङ्ग के समान ही सदाजीवी होते हैं। यह एक तरङ्ग ही समस्त प्राणियों के बीच से होती हुई बहती है। जिस मनुष्य की विचार-धारा जिस प्रकार की होती है, जीवन-तरङ्ग में मिले वैसे विचार उसके साथ मिलकर उसके मानस में निवास बना लेते हैं। मनुष्य का एक दूषित अथवा निर्दोष विचार अपने मूलरूप में एक ही रहेगा ऐसा नहीं। वह सर्वव्यापी जीवन तरङ्ग से अनुरूप अन्य विचारों को आकर्षित कर उन्हें अपने साथ बसा लेगा और इस प्रकार अपनी जाति की वृद्धि कर लेगा।

मनुष्य का समस्त जीवन उसके विचारों के साँचे में ही ढलता है। सारा जीवन आन्तरिक विचारों के अनुसार ही प्रकट होता है। कारण के अनुरूप कार्य के समान ही प्रकृति का यह निश्चित नियम है कि मनुष्य जैसा भीतर होता है, वैसा ही बाहर। मनुष्य के भीतर की उच्च अथवा निम्न स्थिति का बहुत कुछ परिचय उसके बाह्य स्वरूप को देखकर पाया जा सकता है। जिसके शरीर पर अस्त-व्यस्त, फटे-चीथड़े और गन्दगी दिखलाई दे, समझ लीजिये कि यह मलीन विचारों वाला व्यक्ति है, इसके मन में पहले से ही अस्त-व्यस्तता जड़ जमाये बैठी है।

विचार-सूत्र से ही आन्तरिक और बाह्य-जीवन का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। विचार जितने परिष्कृत, उज्ज्वल और दिव्य होंगे, अन्तर भी उतना ही उज्ज्वल तथा दैवी सम्पदाओं से आलोकित होगा, जिसका प्रकाश बाह्य द्वारा सम्पादित स्थूल कार्यों में प्रकट होगा। जिस कलाकार अथवा साहित्यकार की भावनायें जितनी ही प्रखर और उच्चकोटि की होंगी उनकी रचना भी उतना ही उच्च और उत्तम कोटि की होगी।

भावनाओं और विचारों का प्रभाव स्थूल शरीर पर पड़े बिना नहीं रहता। बहुत समय तक प्रकृति के इस स्वाभाविक नियम पर न तो विश्वास किया गया और न उपयोग। लोगों को इस विषय में जरा भी चिन्ता नहीं थी कि मानसिक स्थितियों का प्रभाव बाह्य स्थिति पर पड़ सकता है और आन्तरिक जीवन का कोई सम्बन्ध मनुष्य के बाह्य जीवन से भी हो सकता है। दोनों को एक दूसरे से पृथक मान कर गतिविधि चलती रही। आज जो शरीर-शास्त्री अथवा चिकित्सक यह मानने लगे हैं कि विचारों का शारीरिक स्थिति से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है, वे पहले बहुत समय तक औषधियों जैसी जड़-वस्तुओं का शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है—इसके प्रयोग पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किये रहे।

इससे वे चिकित्सा के क्षेत्र में आन्तरिक स्थिति का लाभ उठाने के विषय में काफी पिछड़ गये। चिकित्सक अब धीरे-धीरे इस बात का महत्व

समझने और चिकित्सा में मनोदशाओं का समावेश करने लगे हैं। मानस चिकित्सा का एक शास्त्र ही अलग बनता और विकास करता चला आ रहा है अनुभवी लोगों का विश्वास है कि यदि यह मानस चिकित्सा-शास्त्र पूरी तरह विकसित और पूर्ण हो गया तो कितने ही रोगों में औषधियों के प्रयोग की आवश्यकता कम हो जायगी। लोग अब यह बात मानने के लिए तैयार हो गये हैं कि मनुष्य के अधिकांश रोगों का कारण उसके विचारों तथा मनोदशाओं में निहित रहता है। यदि उनको बदल दिया जाये तो वे रोग बिना औषधियों के ही ठीक हो सकते हैं। वैज्ञानिक इसकी खोज, प्रयोग तथा परीक्षण में लगे हुये हैं।

शरीर-रचना के सम्बन्ध में जाँच करने वाले एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने अपनी प्रयोगशाला में तरह-तरह के परीक्षण करके यह निष्कर्ष निकाला है कि मनुष्य का समस्त शरीर अर्थात् हड्डियाँ, माँस, स्नायु आदि मनुष्य की मनोदशा के अनुसार एक वर्ष में बिल्कुल परिवर्तित हो जाते हैं और कोई-कोई भाग तो एक-दो सप्ताह में ही बदल जाते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि चिकित्सा के क्षेत्र में मानसोपचार का बहुत महत्व है। सच बात तो यह है कि आरोग्य प्राप्ति का प्रभावशाली उपाय आन्तरिक स्थिति का अनुकूल प्रयोग ही है। औषधियों तथा तरह-तरह की जड़ी-बूटियों का उपयोग कोई स्थायी लाभ नहीं करता, उनसे तो रोग के बाह्य लक्षण दब भर जाते हैं। रोग का मूल कारण नष्ट नहीं होता। जीवनी-शक्ति जो आरोग्य का यथार्थ आधार है, मनोदशाओं के अनुसार बढ़ती-घटती रहती है। यदि रोगी के लिये ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी जाये कि वह अधिक से अधिक प्रसन्न तथा उल्लसित रहने लगे, तो उसकी जीवन-शक्ति बढ़ जायेगी, जो अपने प्रभाव से रोग को निर्मूल कर सकती है।

बहुत बार देखने में आता है कि डाक्टर रोगी के घर जाता है, और उसे खूब अच्छी तरह देख-भाल कर चला जाता है। कोई दवा नहीं देता। तब भी रोगी अपने को दिन भर भला-चंगा अनुभव करता रहता है। इसका मनोवैज्ञानिक कारण यही होता है कि वह बुद्धिमान् डाक्टर अपने साथ रोगी के

लिये अनुकूल वातावरण लाता है और अपनी गतिविधि से ऐसा विश्वास छोड़ जाता है कि रोगी की दशा ठीक है, दवा देने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। इससे रोगी तथा रोगी के अभिभावकों का यह विचार दृढ़ हो जाता है कि रोग ठीक हो रहा है। विचारों का अनुकूल प्रभाव जीवन-तत्व को प्रोत्साहित करता है और बीमार की तकलीफ कम हो जाती है।

कुछ समय पूर्व कुछ वैज्ञानिकों ने इस सत्य का पता लगाने के लिये कि क्या मनुष्य के शरीर पर आन्तरिक भावनाओं का कोई प्रभाव पड़ता है, एक परीक्षण किया। उन्होंने विभिन्न प्रवृत्तियों के आदमियों को एक कोठरी में बन्द कर दिया। उनमें से कोई क्रोधी, कोई विषयी और कोई नशों का व्यसनी था। थोड़ी देर बाद गर्मी के कारण उन सबको पसीना आ गया। उनके पसीने की बूँदें लेकर अलग-अलग विश्लेषण किया गया और वैज्ञानिकों ने उनके पसीने में मिले रासायनिक तत्वों के आधार पर उनके स्वभाव घोषित कर दिये जो बिल्कुल ठीक थे।

मानसिक दशाओं अथवा विचार-धाराओं का शरीर पर प्रभाव पड़ता है, इसका एक उदाहरण बड़ा ही शिक्षा-प्रद है—एक माता को एक दिन किसी बात पर बहुत क्रोध हो गया। पाँच मिनट बाद उसने उसी आवेश की अवस्था में अपने बच्चे को स्तनपान कराया और एक घण्टे के भीतर ही बच्चे की हालत खराब हो गई और उसकी मृत्यु हो गई। शव परीक्षा के परिणाम से विदित हुआ कि मानसिक क्षोभ के कारण माता का रक्त तीक्ष्ण परमाणुओं से विषैला हो गया और उसके प्रभाव से उसका दूध भी विषाक्त हो गया था, जिसे पी लेने से बच्चे की मृत्यु हो गई।

यही कारण है कि शिशु-पालन के नियमों में माता को परामर्श किया गया है कि बच्चे को एकान्त में तथा निश्चिन्त एवं पूर्ण प्रसन्न मनोदशा में स्तनपान करायें। क्रोध अथवा आवेग की दशा में दूध पिलाना बच्चे के स्वास्थ्य तथा संस्कारों के लिए हानिप्रद होता है। जिन माताओं के दूध पीते बच्चे, रोगी, रोने वाले, चिड़-चिड़े अथवा क्षीणकाय होते हैं, उसका मुख्य कारण यही रहता है कि वे मातायें स्तनपान के वांछित नियमों का पालन नहीं करतीं

अन्यथा यह आयु ही बच्चों के ताजे तन्दुरुस्त होने की होती है। मनुष्य के विचारों का शरीर की अवस्था से बहुत घनिष्ट सम्बन्ध होता है। यह एक प्राकृतिक नियम है।

इस नियम की वास्तविकता का प्रमाण कोई भी अपने अनुभव के आधार पर पा सकता है। वह दिन याद करें कि जिस दिन कोई दुर्घटना देखी हो। चाहे उस दुर्घटना का सम्बन्ध अपने से न रहा हो तब भी उसे देखकर मानसिक स्थिति पर जो प्रभाव पड़ा उसके कारण शरीर सन्न रह गया, चलने की शक्ति कम हो गई, खड़ा रहना मुश्किल पड़ गया, शरीर में सिहुरन अथवा कंपन पैदा हो गया, आँसू आ गये अथवा मुख सूख गया। उसके बाद भी जब-जब उस भयङ्कर घटना का विचार मस्तिष्क में आता रहा शरीर पर बहुत बार उसका प्रभाव होता रहा।

विचारों के अनुसार ही मनुष्य का जीवन बनता-बिगड़ता रहता है। बहुत बार देखा जाता है कि अनेक लोग बहुत समय तक लोकप्रिय रहने के बाद बहिष्कृत हो जाया करते हैं दुकानदार पहले तो उन्नति करते रहते हैं, फिर बाद में उनका पतन हो जाता है। इसका मुख्य कारण यही होता है कि जिस समय जिस व्यक्ति की विचार-धारा शुद्ध, स्वच्छ तथा जनोपयोगी बनी रहती है और उसके कार्यों की प्रेरणा स्रोत बनी रहती है, वह लोकप्रिय बना रहता है। किन्तु जब उसकी विचार-धारा स्वार्थ, कपट अथवा छल के भावों से दूषित हो जाती है तो उसका पतन हो जाता है। अच्छा माल देकर और उचित मूल्य लेकर जो व्यवसायी अपनी नीति, ईमानदारी और सहयोग को दृढ़ रखते हैं, वे शीघ्र ही जनता का विश्वास जीत लेते हैं, और उन्नति करते जाते हैं। पर ज्योंही उसकी विचार धारा में गैर-ईमानदारी, शोषण और अनुचित लाभ के दोषों का समावेश हुआ नहीं कि उसका व्यापार ठप्प होने लगता है। इसी अच्छी बुरी विचार-धारा के आधार पर न जाने कितनी फर्में और कम्पनियाँ नित्य ही उठती गिरती रहती हैं।

विचार-धारा में जीवन बदल देने की कितनी शक्ति होती है, इसका प्रमाण हम महर्षि बाल्मीकि के जीवन में पा सकते हैं। महर्षि बाल्मीकि अपने

प्रारम्भिक जीवन में रत्नाकर डाकू के नाम से प्रसिद्ध थे। उनका काम राहगीरों को मारना, लूटना और उससे प्राप्त धन से परिवार का पोषण करना था। एक बार देवर्षि नारद को उन्होंने पकड़ लिया। नारद ने रत्नाकर से कहा कि तुम यह पाप क्यों करते हो? चूँकि वे उच्च एवं निर्विकार विचार-धारा वाले थे इसलिये रत्नाकर डाकू पर उनका प्रभाव पड़ा, अन्यथा भय के कारण किसी भी वंचित व्यक्ति ने उसके सामने कभी मुख तक नहीं खोला था। उसका काम तो पकड़ना, मार डालना और पैसे छीन लेना था, किसी के प्रश्नोत्तर से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था। किन्तु उसने नारद का प्रश्न सुना और उत्तर दिया—"अपने परिवार का पोषण करने के लिये।"

नारद ने पुनः पूछा कि "जिनके लिये तुम इतना पाप कमा रहे हो, क्या वे लोग तुम्हारे पाप में भागीदार बनेंगे।" रत्नाकर की विचार-धारा आंदोलित हो उठी, और वह नारद को एक वृक्ष से बाँधकर घर गया और परिजनों से नारद का जिक्र किया और उनके प्रश्न का उत्तर पूछा। सबने एक स्वर से निषेध करते हुए कह दिया कि हम सब तो तुम्हारे आश्रित हैं। हमारा पालन करना तुम्हारा कर्तव्य है, अब उसके लिये यदि तुम पाप करते हो तो इससे हम लोगों को क्या मतलब? अपने पाप के भागी तुम खुद होगे।

परिजनों का उत्तर सुनकर रत्नाकर की आँखें खुल गईं। उसकी विचार-धारा बदल गई और नारद के पास आकर दीक्षा ली और तप करने लगा। आगे चलकर वही रत्नाकर डाकू महर्षि वाल्मीकि बने और रामायण महाकाव्य के प्रथम रचयिता। विचारों की शक्ति इतनी प्रबल होती है कि वह देवता को राक्षस और राक्षस को देवता बना सकती है।

जिस प्रकार उपयोगी, स्वस्थ और सात्विक विचार जीवन को सुखी व सन्तुष्ट बना देते हैं, उसी प्रकार क्रोध, काम और ईर्ष्या-द्वेष के विषय से भरे विचार जीवन को जीता-जागता नरक बना देते हैं। स्वर्ग-नरक का निवास अन्यत्र कहीं नहीं मनुष्य की विचार-धारा में रहता है। देवताओं जैसे शुभ और उपकारी विचार वाला मन की स्वर्गीय स्थिति और आसुरी विचारों वाला व्यक्ति नरक जैसी स्थिति में निवास करता है। दुःख अथवा सुख की अधिकांश

परिस्थितियाँ तथा पतन-उत्थान की अधिकांश अवस्थायें मनुष्य की अपनी विचार-धारा पर बहुत कुछ निर्भर रहती हैं। इसलिये मनुष्य को अपनी विचार-धारा के प्रति सदा सावधान रहकर उन्हें शुभ तथा मांगलिक दिशाओं में ही प्रेरित करते रहना चाहिये।

विचार ही जीवन की आधार शिला है

विचारों में महान शक्ति है। जिस तरह के हमारे विचार होंगे उसी तरह की हमारी सारी क्रियाएँ होंगी और तदनुकूल ही उनका अच्छा बुरा परिणाम हमें भुगतना पड़ेगा। विचारों के पश्चात् ही हमारे मन में किसी वस्तु या परिस्थिति की चाह उत्पन्न होती है और तब हम उस दिशा में प्रयत्न करने लगते हैं। जिसकी हम सच्चे दिल से चाह करते हैं, जिसकी प्राप्ति के लिए हम अन्तःकरण से अभिलाषा करते हैं, उस पर यदि दृढ़ निश्चय के साथ कार्य किया जाय, तो उस वस्तु की प्राप्ति अवश्यम्भावी है। जिस आदर्श को हमने सच्चे हृदय से अपनाया है, यदि उस पर मनसा—वाचा—कर्मणा से चलने को हम कटिबद्ध हैं, तो हमारी सफलता निःसन्देह है।

जब हम विचार द्वारा किसी वस्तु या परिस्थिति का चित्र मन पर अङ्कित कर उसके लिए प्रयत्नशील होते हैं, उसी समय से उस पदार्थ के साथ हमारा सम्बन्ध जुड़ना आरम्भ हो जाता है। यदि हम चाहते हैं कि हम दीर्घ काल तक नवयुवा बने रहें तो हमें चाहिए कि हम सदा अपने मनको यौवन के सुखद विचारों के आनन्द-सागर में लहराते रहें। यदि हम चाहते हैं कि हम सदा सुन्दर बने रहें, हमारे मुख-मंडल पर सौन्दर्य का दिव्य प्रकाश हमेशा झलका करे तो हमें चाहिए कि हम अपनी आत्मा को सौन्दर्य के सुमधुर सरोवर में नित्य स्नान कराते रहें।

यदि आपको संसार में महापुरुष बनकर यश प्राप्त करना है, तो आप जिस महापुरुष के सदृश होने की अभिलाषा रखते हैं, उसका आदर्श सदा अपने सामने रक्खें। आप अपने मन में यह दृढ़ विश्वास जमायें कि हममें अपने आदर्श की पूर्णता और कार्य सम्पादन शक्ति पर्याप्त मात्रा में मौजूद है। आप अपने मन से सब प्रकार की हीन भावना को हटायें और मन में कभी निर्ब-

लता, न्यूनता, असमर्थता और असफलता के विचारों को न आने दें। आप अपने आदर्श की पूर्ति हेतु मन, वचन, कर्म से पूर्ण दृढ़ता पूर्वक प्रयत्न करें और विश्वास रक्खें कि आपके प्रयत्न अन्ततः सफल होकर रहेंगे।

आशाजनक विचारों में बड़ी विलक्षण शक्ति भरी हुई है। आप इसका अवश्य अनुभव कीजिए। आप यह दृढ़ धारणा बना लीजिए कि हमारी अभिलाषाएँ—यदि वे सात्विक और पवित्र हैं—अवश्य पूर्ण होंगी, हमारे मनोरथ सिद्ध होंगे और हमारे सुख स्वप्न सच्चे साबित होंगे। हमारे लिए जो कुछ होगा, वह अच्छा ही होगा बुरा कभी न होगा। तब आप देखेंगे, कि इस तरह के शुभ, दिव्य और आशामय विचारों का आपकी शारीरिक, मानसिक, सांसारिक एवं आध्यात्मिक उन्नति पर बड़ा ही अच्छा असर होता है।

आप अपने हृदय में इस विश्वास की जड़ जमालें कि जिस कार्य के लिए सृष्टि कर्ता परमात्मा ने हमें बनाया और यहाँ भेजा है, उस कार्य को हम अवश्य पूर्ण करेंगे। इसके विषय में अपने अन्तःकरण में तिल मात्र भी सन्देह को स्थान न दें। आप हमेशा उन्हीं विचारों को अपने मन मन्दिर में प्रवेश करने दें, जो हितकर हैं, कल्याणकारी हैं। उन विचारों को देश निकाला दे दें, जो मन में किसी प्रकार का सम्भ्रम या अविश्वास उत्पन्न करते हों। आप अपने पास उन विचारों को जरा भी न फटकने दें, जो असफलता या निराशा का संकेत मात्र करते हों।

आप चाहे जो काम करें, चाहे जो होना चाहें पर हमेशा उसके बारे में आशा पूर्ण, शुभसूचक विचार रक्खें। ऐसा करने से आपको अपनी कार्य शक्ति बढ़ती हुई मालूम होगी, और साथ में यह भी अनुभव होगा कि हम दिनों दिन प्रगति कर रहे हैं। जहाँ आपने अपने मन मन्दिर में आनन्दप्रद, सौभाग्यशाली और शुभ चित्रों को देखने की आदत बना ली तो फिर इसके विपरीत परिणामकारी आदत बनाना आपके लिए असम्भव हो जायगा।

क्या आप वास्तव में सुख की खोज में हैं? तो आप मन, वचन और काया से यह धारण करलें कि हमारा भविष्य प्रकाशमान होगा, हम उन्नतिशील और सुखी होंगे, हमें सफलता और विजय एवं सब प्रकार की आनन्द-

अनक सामग्री अवश्य प्राप्त होगी । बस सबसे प्रथम सुविचारों की दिव्य पूंजी लेकर कर्मक्षेत्र में प्रवेश कीजिए और फिर उसके मीठे फल चाखिए ।

बहुतेरे मनुष्य अपनी इच्छाओं को—अपनी आशामय तरङ्गों को—जाज्वल्यमान रखने की बजाय उन्हें कमजोर कर डालते हैं । वे इस बात को नहीं जानते कि हमारी अभिलाषाओं की सिद्धि के लिए जितना ही हम दृढ़ भाव, अविचल निश्चय रक्खेंगे, उतना ही हम उनको सिद्ध कर सकेंगे । कोई बात नहीं यदि हमें अपने कार्य सिद्धि का समय बहुत दीर्घ मालूम होता हो, पर यदि हम सच्चे दिल से उसको प्रत्यक्ष करने के लिए जुट जावेंगे, तो धीरे-धीरे अवश्य ही हम अपने कार्य में सफल हो जावेंगे ।

बहुतेरे मनुष्य कहा करते हैं कि भाई ! अब हम बूढ़े हो गये, थक गये, बेकाम हो गये । अब हमें परमात्मा बुला ले तो अच्छा हो । वे इस रोने को रोते रहते हैं कि "हम बड़े अभागे हैं, कमनसीब हैं । हमारा भाग्य फूट गया है—दैव हमारे विरुद्ध है । हम दीन हैं, लाचार हैं । हमने जी तोड़ परिश्रम किया, उन्नत होना चाहा पर भाग्य ने हमें सहायता न दी ।" पर वे बेचारे इस बात को नहीं जानते कि इस तरह का रोना-रोने से हम अपने हाथ से अपने भाग्य को फोड़ते हैं । उन्नति रूपी चन्द्रिका को काले बादलों से ढांकते हैं । इस तरह के कुविचार हमारी शान्ति, सुख और सफलता के घोर शत्रु हैं । इन्हें देश निकाला देने में ही कल्याण है । उत्पादक शक्ति का यह एक नियम है कि जिसका हम दृढ़ता पूर्वक चिंतन करते हैं, वह वस्तु हमें अवश्य प्राप्त होती है । यदि आप इस बात का पक्का विश्वास करें कि हमें आवश्यक सुख सुविधाओं का लाभ होगा । हम समृद्धशाली होंगे, हम प्रभावशाली होंगे और आप इस दृष्टि से अपना प्रयत्न आरम्भ करेंगे तो आप में एक प्रकार की विलक्षण उत्पादक-शक्ति का उदय होगा, जो आपके मनोरथों को सफल करेगी ।

बहुत से मनुष्य कहेंगे कि इस तरह के स्वप्नों में डूबे रहने से—कल्पना ही कल्पना में रहने से—हम वास्तव में कुछ भी न कर सकेंगे, पर यह उनकी भूल है । हमारे कहने का यह आशय नहीं है कि आप हमेशा कल्पना लोक में

ही विचरते रहें, विचार ही विचार में रह जावें, केवल मन ही के लड्डू खाया करें। किन्तु हमारे कहने का आशय यह है कि किसी काम को करने के पहले उस काम को करने की दृढ़ इच्छा मन में करलें और सारी विचार-शक्ति को उस ओर झुका दें। मन के विचारों को मन ही मन में लय न करके उसको कार्य रूप में परिणित करना अत्यावश्यक है। सब बड़े आदमी जिन्होंने महत्ता प्राप्त की है, वे सब पहले उन सब अभिलषित पदार्थों का स्वप्न ही देखा करते थे। जितनी स्पष्टता, आग्रह एवं उत्साह से उन्होंने अपने सुख-स्वप्न की, आदर्श की सिद्धि के लिए प्रयत्न किया, उतनी ही उन्हें सिद्धि प्राप्त हो सकी।

समृद्धि के अंकुर पहले हमारे मन में ही फूटते हैं और इधर-उधर फैलते हैं। दरिद्रता का भाव रखकर हम समृद्धि को अपने मानसिक क्षेत्र में कैसे आकर्षित कर सकते हैं? क्योंकि इस दुर्भाव के कारण यह वस्तु, जिसकी हम चाह करते हैं एक पैर भी हमारी ओर आगे नहीं बढ़ती। कार्य करना किसी एक चीज के लिए और आशा करना किसी दूसरी की—यह स्थिति बहुत ही सोचनीय है। मनुष्य समृद्धि की चाहे जितनी इच्छा करे, पर दुर्दैव के—गरीबी के विचार समृद्धि के आने के द्वारों को बन्द कर देते हैं। सौभाग्य और समृद्धि, दरिद्रता एवं निरुत्साह पूर्ण विचारों के प्रवाह द्वारा अवरुद्ध होने के कारण आप तक नहीं आ सकते। उन्हें पहले मानसिक क्षेत्र में उत्पन्न करना चाहिए। यदि हम समृद्धिशाली होना चाहें तो पहले हमें उसके अनुसार अपने विचार बना लेना चाहिए।

निश्चय कर लो कि दरिद्रता के विचारों से हम अपने मुँह को मोड़ लेंगे। हम केवल हठाग्रह से समृद्धि की ही आशा रखेंगे, ऐश्वर्यशाली आदर्श ही को अपनी आत्मा में जगह देंगे, जो कि हमारी स्वाभाविक प्रकृति के अनुकूल है। निश्चय कर लो कि हमें सुख-समृद्धि प्राप्त करने में अवश्य सफलता मिलेगी। इस तरह का निश्चय, आशा और अभिलाषा तुम्हें वह पदार्थ प्राप्त करायेगी, जिसकी तुम्हें बड़ी लालसा है। हार्दिक अभिलाषा में अटूट उत्पादक शक्ति भरी है। जीवन में सफलता प्राप्त करना केवल हमारे विचारों की महा-नता पर निर्भर है। विचार ही हमारे जीवन की आधार शिला हैं।

विचारों की शक्ति अपरिमित है

हम संसार में जो कुछ देखते हैं, हमें जो कुछ भी दृष्टिगोचर होता है वह सब विचारों का ही मूर्त रूप है। यह समस्त सृष्टि विचारों का ही चमत्कार है। जड़ चेतनमय जो कुछ चराचर जगत है उसको ऋषियों ने परमात्मा के विचारों का स्फुरण बतलाया है।

हमने आज तक जो कुछ किया है, जो कुछ कर रहे हैं और आगे भी जो कुछ करेंगे वह सब विचारों की ही परिणति होगी। प्रत्येक क्रिया के सचात्मक विचार ही होते हैं। बिना विचार के कोई भी कार्य सम्भव नहीं है।

इतने-इतने बड़े भवन, कल-कारखाने, पुल-बाँध आदि जो देखते ही मनुष्य को चकित कर देते हैं, सब मनुष्य के विचारों के ही फल हैं। कोई भी रचना करने से पूर्व रचनाकार के मस्तिष्क में तत्सम्बन्धी विचारों का ही जन्म होता है। विचार परिपक्व हो जाने पर ही वह सृजन की दिशा में अग्रसर होता है। विचार शून्यता मनुष्य को अकर्मण्य और निकम्मा बना देती है। जो कुछ कला-कौशल और साहित्य शिल्प दिखाई दे रहा है वह सब विचार-वृक्ष की ही उपज है।

किसी भी कार्य के प्रेरक होने से कार्य की सफलता-असफलता, अच्छाई-बुराई और उच्चता-निम्नता के हेतु भी मनुष्य के अपने विचार ही हैं। जिस प्रकार के विचार होंगे सृजन भी उसी प्रकार का होगा।

नित्य प्रति देखने में आता है कि एक ही प्रकार का काम दो आदमी करते हैं। उनमें से एक का कार्य सुन्दर सफल और सुघड़ होता है और दूसरे का नहीं। एक से हाथ पैर, उपादान और साधनों के होते हुये भी दो मनुष्यों के एक ही कार्य में विषमता क्यों होती है? इसका एक मात्र कारण उनकी अपनी-अपनी विचार प्रेरणा है। जिसके कार्य सम्बन्धी विचार जितने सुन्दर, सुघर और सुलझे हुए होंगे उसका कार्य भी उसी के अनुसार उज्ज्वल होगा।

जितने भी शिल्प, शास्त्र तथा साहित्य का सृजन हुआ है वह सब विचारों की ही विभूति है। चित्रकार नित्य नये-नये चित्र बनाता है, कवि

नित्य नये काव्य रचता है, शिल्पकार नित्य नये माडल और नमूने तैयार करता है। यह सब विचारों का ही निर्माण है। कोई भी रचनाकार जो नया निर्माण करता है, वह कहीं से उतार कर नहीं लाता और न कोई अदृश्य देव ही उसकी सहायता करता है। वह यह सब नवीन रचनायें अपने विचारों के ही बल पर करता है। विचार ही वह अद्भुत शक्ति है जो मनुष्य को नित्य नवीन प्रेरणा दिया करती है। भूत, भविष्य और वर्तमान में जो कुछ दिखलाई दिया, दिखलाई देगा और दिखलाई दे रहा है वह सब विचारों में वर्तमान रहा है, वर्तमान रहेगा और वर्तमान है। तात्पर्य यह है कि समग्र त्रयकालिक कर्तृत्व मनुष्य के विचार पटल पर अङ्कित रहता है। विचारों के प्रतिबिम्ब को ही मनुष्य बाहर के संसार में उतारा करता है। जिसकी विचार स्फुरणा जितनी शक्ति मती होगी उसकी रचना भी उतनी ही सबल एवं सफल होगी। विचार शक्ति जितनी उज्ज्वल होगी, बाह्य प्रतिबिम्ब भी उतने ही स्पष्ट और सुबोध होंगे।

मनुष्य की विचार पुटी में संसार के सारे श्रेय एवं प्रेय सन्निहित रहते हैं। यही कारण है कि मनुष्य ने न केवल एक, अपितु असंख्यों क्षेत्रों में चमत्कार कर दिखाये हैं। जिन विचारों के बल पर मनुष्य साहित्य का सृजन करता है उन्हीं विचारों के बल पर कल-कारखाने चलाता है। जिन विचारों के बल पर आत्मा और परमात्मा की खोज कर लेता है, उन्हीं विचारों के बल पर खेती करता और विविध प्रकार के धन-धान्य उत्पन्न करता है, व्यापार और व्यवसाय करता है। यही नहीं, जिन विचारों की प्रेरणा से वह संत, सज्जन और महात्मा बनता है उन्हीं विचारों की प्रेरणा से वह निर्दय अपराधी भी बन जाता है। इस प्रकार सहज ही समझा जा सकता है कि मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व तथा कर्तृत्व में उसकी विचार शक्ति ही काम कर रही है।

एक दिन पशुओं की भाँति सारी क्रियाओं में पूर्ण पशु मनुष्य आज इस सभ्यता के उन्नत शिखर पर किस प्रकार पहुँच गया? अपनी विचार-शक्ति की सहायता से। विचार-शक्ति की अद्भुत उपलब्धि इस सृष्टि में केवल मानव प्राणी को ही प्राप्त हुई है। यही कारण है कि किसी दिन पशुओं के

समकक्ष मनुष्य आज महान उन्नत दशा में पहुँच गया है और अन्य सारे पशु-पक्षी आज भी अपनी आदि स्थिति में उसी प्रकार रह रहे हैं। पशु-पक्षी नीड़ों और निविड़ों में पूर्ववत् ही निवास कर रहे हैं किन्तु मनुष्य बड़े-बड़े नगर बनाकर अगणित सुविधाओं के साथ रह रहा है। यह सब विचार-कला का ही विस्मय है।

विचारों के बल पर मनुष्य न केवल पशु से मनुष्य बना है वह मनुष्य से देवता भी बन सकता है। और विचार-प्रधान ऋषि, मुनि, महात्मा और सन्त मनुष्य से देवकोटि में पहुँचे हैं और पहुँचते रहेंगे।

मनुष्य आज जिस उन्नत अवस्था में पहुँचा है वह एक साथ एक दिन की घटना नहीं है। वह धीरे-धीरे क्रमानुसार विचारों के परिष्कार के साथ आज इस स्थिति में पहुँच सका है। ज्यों-ज्यों उसके विचार परिष्कृत, पवित्र तथा उन्नत होते गये उसी प्रकार अपने साधनों के साथ उसका जीवन परिष्कृत तथा पुरस्कृत होता गया। व्यक्ति-व्यक्ति रूप में भी हम देख सकते हैं कि एक मनुष्य जितना सभ्य, सुशील और सुसंस्कृत है, अपेक्षाकृत दूसरा उतना नहीं। समाज में जहाँ आज भी सन्तों और सज्जनों की कमी नहीं है वहाँ चोर, उचक्के भी पाये जाते हैं। जहाँ बड़े-बड़े शिल्पकार और साहित्यकार मौजूद हैं, वहाँ गोबर गणेशों की भी कमी नहीं है। मनुष्यों की यह वैयक्तिक विषमता भी विचारों, संस्कारों के अनुपात पर ही निर्भर करती है। जिसके विचार जिस अनुपात में परमार्जित हो रहे हैं वह उसी अनुपात में पशु से मनुष्य और मनुष्य से देवता बनता जा रहा है।

विचार-शक्ति के समान कोई भी शक्ति संसार में नहीं है। अरबों का उत्पादन करने वाले व्यवसाय, कारखानों का संचालन, उद्वेलित जन-समुदाय का नियन्त्रण, दुर्दम्य सेनाओं का अनुशासन और बड़े-बड़े साम्राज्यों का शासन और असंख्यों जनता का नेतृत्व एक विचार बल पर ही किया जाता है, अन्यथा एक मनुष्य में एक मनुष्य के योग्य ही सीमित शक्ति रहती है, वह असंख्यों का अनुशासन किस प्रकार कर सकता है? बड़े-बड़े आततायी हुकुमरानों और सुदृढ़ साम्राज्यों को विचार बल से ही उलट दिया गया। बड़े-बड़े हिंस्र पशुओं

और अत्याचारियों को विचार बल से प्रभावित कर सुशील बना लिया जाता है। विचार-शक्ति से बढ़कर कोई भी शक्ति संसार में नहीं है। विचारों की शक्ति अपरिमित तथा अपराजेय है।

विचार एक शक्ति है, विशुद्ध विद्युत शक्ति। जो इस पर समुचित नियन्त्रण कर ठीक दिशा में संचालन कर सकता है वह बिजली की भाँति इससे बड़े-बड़े काम ले सकता है। किन्तु जो इसको ठीक से अनुशासित नहीं कर सकता वह उल्टा इसका शिकार बन जाता है। अपनी ही शक्ति से स्वयं नष्ट हो जाता है अपनी ही आग में जलकर भस्म हो जाता है। इसीलिये मनीषियों ने नियन्त्रित विचारों को मनुष्य का मित्र और अनियन्त्रित विचारों को उसका शत्रु बतलाया है।

समस्त शुभ और अशुभ सुख और दुःख की परिस्थितियों के हेतु तथा उत्थान पतन के मुख्य कारण विचारों को वश में रखना मनुष्य का प्रमुख कर्तव्य है। विचारों को उन्नत कीजिये उनको मङ्गल मूलक बनाइये, उनका परिष्कार एवं परिमार्जन कीजिये और वे आपको स्वर्ग की सुखद परिस्थितियों में पहुँचा देंगे। इसके विपरीत यदि आप ने विचारों को स्वतन्त्र छोड़ दिया उन्हें कलुषित एवं कलंकित होने दिया तो आपको हर समय नरक की ज्वाला में जलने के लिये तैयार रहना चाहिये। विचारों की चपेट से आपको संसार की कोई शक्ति नहीं बचा सकती।

विचारों का तेज ही आपको ओजस्वी बनाता है और जीवन संग्राम में एक कुशल योद्धा की भाँति विजय श्री दिलाता है। इसके विपरीत आपके मुर्दा विचार आपको जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पराजित करके जीवित मृत्यु के अभिशाप के हवाले कर देंगे। जिसके विचार प्रबुद्ध हैं उसकी आत्मा प्रबुद्ध है और जिसकी आत्मा प्रबुद्ध है उससे परमात्मा दूर नहीं है।

विचारों को जाग्रत कीजिये, उन्हें परिष्कृत कीजिये और जीवन के हर क्षेत्र में पुरस्कृत होकर देवताओं के तुल्य ही जीवन व्यतीत करिये। विचारों की पवित्रता से ही मनुष्य का जीवन उज्ज्वल एवं उन्नत बनता है इसके अतिरिक्त जीवन को सफल बनाने का कोई उपाय मनुष्य के पास नहीं है।

विचार-शक्ति का जीवन पर प्रभाव

विचार यद्यपि अगोचर होते हैं, किन्तु उनका प्रभाव गोचरता की पृष्ठ-भूमि पर स्पष्ट प्रकट होता रहता है, विचारों के प्रतिबिम्ब को प्रकट होने से रोका नहीं जा सकता। अविचारी व्यक्ति कितने ही सुन्दर आवरण अथवा आडम्बर में छिपकर क्यों न रहे किन्तु उसकी अविचारिता उसके व्यक्तित्व में स्पष्ट झलकती रहेगी।

नित्यप्रति के सामान्य जीवन का अनुभव इस बात का साक्षी है। बहुत बार हम किन्हीं ऐसे व्यक्तियों के सम्पर्क में आ जाते हैं जो सुन्दर वेश-भूषा के साथ-साथ सूरत-शक्ल से भी बुरे और भद्दे नहीं होते, तब भी उनको देख कर हृदय पर अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं होती। यदि हम यह जानते हैं कि हम बुरे आदमी नहीं हैं, और इस प्रतिक्रिया के पीछे हमारी विरोध भावना अथवा पक्षपाती दृष्टिकोण सक्रिय नहीं है, तो मानना पड़ेगा कि वे अच्छे विचार वाले नहीं हैं। उनका हृदय उस प्रकार स्वच्छ नहीं है जिस प्रकार बाह्यवेष। इसके विपरीत कभी-कभी ऐसा व्यक्ति सम्पर्क में आ जाता है जिसका बाह्य-वेष न तो सुन्दर होता है और न उसका व्यक्तित्व ही आकर्षक होता है तब भी हमारा हृदय उससे मिलकर प्रसन्न हो उठता है, उससे आत्मीयता का अनुभव होता है। इसका अर्थ यही है कि वह आकर्षण बाह्य का नहीं अन्तर का है, जिसमें सद्भावनाओं तथा सद्विचारों के फूल खिले हुए हैं।

इस विचार प्रभाव को इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि जब एक सामान्य पथिक किसी ऐसे मार्ग से गुजरता है जहाँ पर अनेक मृगछौने खेल रहे हों, सुन्दर पक्षी कल्लोल कर रहे हों तो वे जीव उसे देखकर सतर्क भले हो जायें और उस अजनबी को विस्मय से देखने लगें किन्तु भयभीत कदापि नहीं होते। किन्तु यदि उसके स्थान पर जब कोई शिकारी अथवा गीदड़ आता है तो वे जीव भय से त्रस्त होकर भागने और चिल्लाने लगते हैं। ये दोनों ऊपर से देखने में एक जैसे मनुष्य ही होते हैं किन्तु विचार के अनुसार उनके व्यक्तित्व का प्रभाव भिन्न-भिन्न होता है।

कितनी ही सज्जनोचित वेशभूषा में क्यों न हो, दुष्ट दुराचारी को देखते ही पहचान लिया जाता है। साधु तथा सिद्धों के वेश में छिप कर रहने वाले अपराधी अनुभवी पुलिस की दृष्टि से नहीं बच पाते और बात की बात में पकड़े जाते हैं। उनके हृदय का दुर्भाव उनका सारा आवरण भेद कर व्यक्तित्व के ऊपर बोलता रहता है।

जिस प्रकार के मनुष्य के विचार होते हैं वस्तुतः वह वैसा ही बन जाता है। इस विषय में एक उदाहरण बहुत प्रसिद्ध है। बताया जाता है कि भृङ्गी पतंग झींगुर को पकड़ लाता है और बहुत देर तक उसके सामने रहकर गुंजार करता रहता है, यहाँ तक कि झींगुर उसे देखते-देखते बेहोश हो जाता है। उस बेहोशी की दशा में झींगुर की विचार परिधि निरन्तर उस भृंगी के स्वरूप तथा उसकी गुंजार से घिरी रहती है जिसके फलस्वरूप वह झींगुर भी निरन्तर विचार तन्मयता के कारण कुछ समय में भृङ्गी जैसा ही बन जाता है। इसी भृङ्गी तथा कीट के आधार पर आदि कवि वाल्मीकि ने सीता और राम के प्रेम का वर्णन करते हुए एक बड़ी सुन्दर उक्ति अपने महाकाव्य में प्रस्तुत की है।

उन्होंने लिखा है कि सीता ने अशोक-वाटिका की सहचरी विभीषण की पत्नी सरमा से एक बार कहा—"सरमे ! मैं अपने प्रभु राम का निरन्तर ध्यान करती रहती हूँ। उनका स्वरूप प्रतिक्षण मेरी विचार परिधि में समाया रहता है। कहीं ऐसा न हो कि भृङ्गी और पतंग के समान इस विचार तन्मयता के कारण मैं राम-रूप ही हो जाऊँ और तब हमारे दाम्पत्य-जीवन में बड़ा व्यवधान पड़ जायेगा।" सीता की चिन्ता सुनकर सरमा ने हँसते हुए कहा देवी ! आप चिन्ता क्यों करती हैं, आपके दाम्पत्य जीवन में जरा भी व्यवधान नहीं पड़ेगा। जिस प्रकार आप भगवान राम के स्वरूप का विचार करती रहती हैं उसी प्रकार राम भी तो आपके रूप का चिन्तन करते रहते हैं। इस प्रकार यदि आप राम बन जायेंगी तो राम सीता बन जायेंगे। इससे दाम्पत्य-जीवन में क्या व्यवधान पड़ सकता है ? परिवर्तन केवल इतना होगा कि पति पत्नी और पत्नी-पति बन जायेगी।" इस उदाहरण में कितना सत्य है यह नहीं कहा जा सकता, किन्तु यह तथ्य मनोवैज्ञा-

निक आधार पर पूर्णतया सत्य है कि मनुष्य जिन विचारों का चिन्तन करता रहता है उनके अनुरूप ही बन जाता है। इसी सम्बन्ध में एक पौराणिक आख्यान में एक गुरु ने अपने एक अविश्वासी शिष्य की शंका दूर करने के लिये उसे प्रायोगिक प्रमाण दिया। उन्होंने उस शिष्य को बड़े-बड़े सींगों वाला एक भैंसा दिखा कर कहा कि इसका यह स्वरूप अपने मन पर अंकित करके और इस कुटी में बैठकर निरन्तर उसका ध्यान तब तक करता रहे जब तक वे उसे पुकारें नहीं। निदान शिष्य कुटी में बैठा हुआ बहुत समय तक उस भरने भैंसे का और विशेष प्रकार से उसके बड़े-बड़े सींगों का स्मरण करता रहा। कुछ समय बाद गुरु ने उसे बाहर निकलने के लिये आवाज दी। शिष्य ने ज्यों ही खड़े होकर दर्वाजे से सिर डाला कि वह अटक कर रुक गया। ध्यान करते-करते उसके सिर पर उसी भैंसे की तरह बड़े-बड़े सींग निकल आये थे। उसने गुरु को अपनी विपत्ति बतलाई और कृपा करने की प्रार्थना की। तब गुरु ने उसे फिर आदेश दिया कि वह कुछ समय उसी प्रकार अपने स्वाभाविक स्वरूप का चिन्तन करे। निदान उसने ऐसा किया और कुछ समय में उसके सींग गायब हो गये।

आख्यान भले ही सत्य न हो किन्तु उसका निष्कर्ष अक्षरशः सत्य है कि मनुष्य जिस बात का चिन्तन करता रहता है, जिन विचारों में प्रधानतया तन्मय रहता है वह उसी प्रकार का बन जाता है।

दैनिक जीवन के सामान्य उदाहरणों को ले लीजिये। जिन बच्चों को भूत-प्रेतों की काल्पनिक कहानियाँ तथा घटनायें सुनाई जाती रहती हैं वे उनके विचारों में घर कर लिया करती हैं, और जब कभी वे अंधेरे उजेले में अपने उन विचारों से प्रेरित हो जाते हैं तो उन्हें अपने आस-पास भूत-प्रेतों का अस्तित्व अनुभव होने लगता है जबकि वास्तव में वहाँ कुछ नहीं है। उन्हें परछाइयों तथा पेड़-पौधों तक में भूतों का आकार दिखलाई देने लगता है। यह उनके भूतात्मक विचारों की ही अभिव्यक्ति होती है। जो उन्हें दूर पर भूतों के आकार में दिखलाई देती है। अन्ध-विश्वासियों के विचार में भूत-प्रेतों का घरों में भी निवास होता है और उसी दोष के कारण वे कभी-कभी खेलने-

कूदने और तरह-तरह की हरकतें तथा आवाजें करने लगते हैं । यद्यपि ऊपर किसी बाह्य तत्व का प्रभाव नहीं होता तथापि उन्हें ऐसा लगता है कि उन्हें किसी भूत अथवा प्रेत ने दबा लिया है । किन्तु वास्तविकता यह होती है कि उनके विचारों का विकार ही अवसर पाकर उनके सिर चढ़कर खेलने लगता है । किसी दुर्बुद्धि अथवा दुर्बलमना व्यक्ति का जब यह विचार बन जाता है कि कोई उस पर उसे मारने के लिये टोना कर रहा है तब उसे अपने जीवन का ह्रास होता अनुभव होने लगता है । जितना-जितना यह विचार विश्वास में बदलता जाता है उतना-उतना ही वह अपने को क्षीण, दुर्बल तथा रोगी पाता जाता है, अन्त में ठीक-ठीक रोगी बनकर एक दिन मर तक जाता है । जबकि चाहे उस पर कोई टोना किया जा रहा होता है अथवा नहीं । फिर टोना आदि में अथवा उनके प्रेत पिशाचों में वह शक्ति कहाँ जो जीवन-मरण के ईश्वरीय अधिकार को स्वयं ग्रहण कर सकें । यह और कुछ नहीं तदनुरूप विचारों की ही परिणति होती है ।

मनुष्य के आन्तरिक विचारों के अनुरूप ही बाह्य परिस्थितियों का निर्माण होता है । उदाहरण के लिये किसी व्यापारी को ले लीजिये । यदि वह निर्बल विचारों वाला है और भय तथा आशंका के साथ खरीद फरोख्त करता है हर समय यही सोचता रहता है कि कहीं घाटा न हो जाये, कहीं माल का भाव न गिर जाये, कोई रद्दी माल आकर न फंस जाये, तो समझो उसे अपने काम में घाटा होगा अथवा उसका दृष्टिकोण इतना दूषित हो जायेगा कि उसे अच्छे माल में भी त्रुटि दीखने लगेगी, ईमानदार आदमी बेईमान लगने लगेंगे और उसी के अनुसार उसका आचरण बन जायेगा जिससे बाजार में उसकी साख उठ जायेगी । लोग उससे सहयोग करना छोड़ देंगे और वह निश्चित रूप से असफल होगा और घाटे का शिकार बनेगा । अशुभ विचारों से शुभ परिणामों की आशा नहीं की जा सकती ।

कोई मनुष्य कितना ही अच्छा तथा भला क्यों न हो यदि हमारे विचार उसके प्रति दूषित हैं, विरोधी बन जायेगा । विचारों की प्रतिक्रिया विचारों पर होना स्वाभाविक है । इसको किसी प्रकार भी वर्जित नहीं किया

आ सकता । इतना ही नहीं यदि हमारे विचार स्वयं अपने प्रति ओछे अथवा हीन हो जाएँ, हम अपने को अभागा एवं अधम चिन्तन करने लगें तो कुछ ही समय में हमारे सारे गुण नष्ट हो जायेंगे और हम वास्तव में दीन-हीन और मलीन बन जायेंगे । हमारा व्यक्तित्व प्रभावहीन हो जायेगा जो समाज में प्रकट हुए बिना बच नहीं सकता ।

जो आदमी अपने प्रति उच्च तथा उदात्त विचार रखता है अपने व्यक्तित्व का मूल्य कम नहीं आँकता उसका मानसिक विकास सहज ही हो जाता है । उसका आत्म-गौरव जाग उठता है । इसी गुण के कारण बहुत से लोग जो बचपन से लेकर यौवन तक दब्बू रहते हैं आगे चलकर बड़े प्रभावशाली बन जाते हैं । जिस दिन से आप किसी दब्बू, डरपोक तथा साहसहीन व्यक्ति को उठकर खड़े होते और आगे बढ़ते देखें, समझ लीजिये कि उस दिन से उसकी विचारधारा बदल गई और अब उसकी प्रगति कोई रोक नहीं सकता ।

"विचारों में व्यक्ति-निर्माण की बड़ी शक्ति होती है। विचारों का प्रभाव कभी व्यर्थ नहीं जाता । विचार परिवर्तन के बल पर असाध्य रोगियों को स्वस्थ तथा मरणासन्न व्यक्तियों को नया जीवन दिया जा सकता है । यदि आपके विचार अपने प्रति अथवा दूसरे के प्रति ओछे, तुच्छ तथा अवज्ञापूर्ण हैं तो उन्हें तुरन्त ही बदल डालिये और उनके स्थान पर ऊँचे तथा उदात्त तथा यथार्थ विचारों का सृजन कर लीजिए । यह विचार-क्रान्ति आपके चिन्ता, निराशा अथवा पराधीनता के अन्धकार से भरे जीवन को हरा-भरा बना देगी । थोड़ा-सा अभ्यास करने से यह विचार परिवर्तन सहज में ही लाया जा सकता है । अपने व्यक्तित्व को प्रखर तथा उज्ज्वल बनाने के लिए भजन-पूजन के समान ही थोड़ा बैठ कर एकाग्र मन से इस प्रकार आत्म-चिन्तन करिये और देखिये कि कुछ ही दिन में आपमें क्रान्तिकारी परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगेगा ।

विचार कीजिए—"मैं सच्चिदानन्द परमात्मा का अंश हूँ । मेरा उससे अविच्छिन्न सम्बन्ध है । मैं उससे कभी दूर नहीं होता और न वह मुझसे ही

दूर रहता है। मैं शुद्ध-बुद्ध और पवित्र आत्मा हूँ। मेरे कर्तव्य भी पवित्र तथा कल्याणकारी हैं, उन्हें मैं अपने बल पर आत्म-निर्भर रह कर पूरा करूँगा। मुझे किसी दूसरे का सहारा नहीं चाहिये, मैं आत्म-निर्भर, आत्म-विश्वास और प्रबल माना जाता हूँ असद् तथा अनुचित विचार अथवा कार्यों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है और न किसी रोग-दोष से ही मैं आक्रान्त हूँ । संसार की सारी विषमतायें क्षणिक हैं जो मनुष्य की दृढ़ता देखने के लिये आती हैं। उनसे विचलित होना कायरता है। धैर्य हमारा धन और साहस हमारा सम्बल है। इन दो के बल पर बढ़ता हुआ मैं बहुत से ऐसे कार्य कर सकता हूँ जिससे लोक-मंगल का प्रयोजन बन सके। आदि-आदि।"

इस प्रकार के उत्साही तथा सदाशयतापूर्ण चिन्तन करते रहने से एक दिन आपका अवचेतन प्रबुद्ध हो उठेगा, आपकी सोई शक्तियाँ जाग उठेंगी, आपके गुण, कर्म, स्वभाव का परिष्कार हो जायेगा और आप परमार्थ पथ पर, उन्नति के मार्ग पर अनायास ही चल पड़ेंगे । और तब न आपको चिन्ता, न असफलता का भय रहेगा और न लोक परलोक की कोई शङ्का। उसी प्रकार शुद्ध-बुद्ध तथा पवित्र बन जायेंगे जिस प्रकार के आपके विचार होंगे और जिनके चिन्तन को आप प्रमुखता दिए होंगे।

विचार ही जीवन का निर्माण करते हैं

मनुष्य का जीवन उसके विचारों का प्रतिबिम्ब है । सफलता-असफलता, उन्नति-अवनति, तुच्छता महानता सुख-दुःख, शान्ति-अशान्ति आदि सभी पहलू मनुष्य के विचारों पर निर्भर करते हैं । किसी भी व्यक्ति के विचार जानकर उसके जीवन का नक्शा सहज ही मालूम किया जा सकता है। मनुष्य को कायर-वीर, स्वस्थ-अस्वस्थ, प्रसन्न-अप्रसन्न कुछ भी बनाने में उसके विचारों का महत्वपूर्ण हाथ होता है। तात्पर्य यह है कि अपने विचारों के अनुरूप ही मनुष्य का जीवन बनता-बिगड़ता है । अच्छे विचार उसे उन्नत बनायेंगे तो हीन मनुष्य को गिरायेंगे।

स्वामी रामतीर्थ ने कहा था "मनुष्य के जैसे विचार होते हैं वैसा ही

उसका जीवन बनता है।" स्वामी विवेकानन्द ने कहा था "स्वर्ग और नर्क कहीं अन्यत्र नहीं इनका निवास हमारे विचारों में ही है।" भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों को उपदेश देते हुए कहा था "भिक्षुओ! वर्तमान में हम जो कुछ हैं अपने विचारों के ही कारण और भविष्य में जो कुछ भी बनेंगे वह भी अपने विचारों के ही कारण।" शेक्सपीयर ने लिखा है—"कोई वस्तु अच्छी या बुरी नहीं है। अच्छाई बुराई का आधार हमारे विचार ही हैं।" ईसा मसीह ने कहा था "मनुष्य के जैसे विचार होते हैं वैसा ही वह बन जाता है।" प्रसिद्ध रोमन दार्शनिक मार्क्स आरीलियस ने कहा है "हमारा जीवन जो कुछ भी है हमारे अपने ही विचारों के फलस्वरूप है।" प्रसिद्ध अमरीकी लेखक डेल कार्नेगी ने अपने अनुभवों पर आधारित तथ्य प्रकट करते हुए लिखा है "जीवन में मैंने सबसे महत्वपूर्ण कोई बात सीखी है तो वह है विचारों की अपूर्व-शक्ति और महत्ता। विचारों की शक्ति सर्वोच्च तथा अपार है।"

संसार के समस्त विचारकों ने एक स्वर से विचारों की शक्ति और उसके असाधारण महत्व को स्वीकार किया है। संक्षेप में जीवन की विभिन्न गतिविधियों का संचालन करने में हमारे विचारों का ही प्रमुख हाथ रहता है। हम जो कुछ भी करते हैं विचारों की प्रेरणा से ही करते हैं।

संसार में दिखाई देने वाली विभिन्नतायें, विचित्रतायें भी हमारे विचारों का प्रतिबिम्ब ही हैं। संसार मनुष्य के विचारों की ही छाया है। किसी के लिए संसार स्वर्ग है तो किसी के लिए नर्क। किसी के लिए संसार अशान्ति, क्लेश, पीड़ा आदि का आगार है तो किसी के लिए सुख सुविधा सम्पन्न उपवन। एक सी परिस्थितियों में एक-सी सुख सुविधा समृद्धि से युक्त दो व्यक्तियों में भी अपने विचारों की भिन्नता के कारण असाधारण अन्तर पड़ जाता है। एक जीवन में प्रतिक्षण सुख, सुविधा, प्रसन्नता, खुशी, शान्ति, सन्तोष का अनुभव करता है तो दूसरा पीड़ा, शोक, क्लेशमय जीवन बिताता है। इतना ही नहीं कई व्यक्ति कठिनाई का अभावग्रस्त जीवन बिताते हुए भी प्रसन्न रहते हैं तो कई समृद्ध होकर भी जीवन को नारकीय यन्त्रणा समझते हैं। एक व्यक्ति अपनी परिस्थितियों में संतुष्ट रहकर जीवन के लिए भगवान

को धन्यवाद देता है तो दूसरा अनेक सुख सुविधायें पाकर भी असन्तुष्ट रहता है। दूसरों को कोसता है, महज अपने विचारों के ही कारण।

प्राचीन ऋषि, मुनि आरण्य जीवन बिताकर, कन्द मूल फल खाकर भी सन्तुष्ट और सुखी जीवन बिताते थे और धरती पर स्वर्गीय अनुभूति में मग्न रहते थे। एक ओर आज का मानव है जो पर्याप्त सुख सुविधा, समृद्धि, ऐश्वर्य, वैज्ञानिक साधनों से युक्त जीवन बिताकर भी अधिक क्लेश, अशान्ति, दुःख व उद्विग्नता से परेशान है। यह मनुष्य के विचार चिन्तन का ही परिणाम है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक स्विफ्ट अपने प्रत्येक जन्म दिन पर काले और भद्दे कपड़े पहनकर शोक मनाया करते थे। वह कहते थे "अच्छा होता यह जीवन मुझे न मिलता मैं दुनियाँ में न आता।" इसके ठीक विपरीत अन्धे कवि मिल्टन कहा करते थे "भगवान का शुक्रिया है जिसने मुझे जीवन का अमूल्य वरदान दिया।" नेपोलियन बोनापार्ट ने अपने अन्तिम दिनों में कहा था "अफसोस है मैंने जीवन का एक सप्ताह भी सुख शान्ति पूर्वक नहीं बिताया" जब कि उसे समृद्धि, ऐश्वर्य, सम्पत्ति यश आदि की कोई कमी नहीं रही। सिकन्दर महान् भी अपने अन्तिम जीवन में पश्चाताप करता हुआ ही मरा। जीवन में सुख, शांति, प्रसन्नता अथवा दुःख, क्लेश, अशांति पश्चाताप आदि का आधार मनुष्य के अपने विचार हैं अन्य कोई नहीं। समृद्ध व ऐश्वर्य सम्पन्न जीवन में भी व्यक्ति गलत विचारों के कारण दुःखी रहेगा और उत्कृष्ट विचारों से अभाव-ग्रस्त जीवन में भी सुख, शांति, प्रसन्नता का अनुभव करेगा, यह एक सुनिश्चित तथ्य है।

संसार एक शीशा है। इस पर हमारे विचारों की जैसी छाया पड़ेगी वैसा ही प्रतिबिम्ब दिखाई देगा। विचारों के आधार पर ही संसार सुखमय अथवा दुःखमय अनुभव होता है। पुरोगामी उत्कृष्ट उत्तम विचार जीवन को ऊपर उठाते हैं, उन्नति, सफलता, महानता का पथ प्रशस्त करते हैं तो हीन निम्नगामी कुत्सित विचार जीवन को गिराते हैं।

विचारों में अपार शक्ति है। शक्ति सदैव कर्म को प्रेरणा देती है। वह अच्छे कार्यों में लग जाय तो अच्छे और बुरे मार्ग की ओर प्रवृत्त हो जाय तो

बुरे परिणाम प्राप्त होते हैं। विचारों में एक प्रकार की चेतना शक्ति होती है। किसी भी प्रकार के विचारों के एक स्थान पर केन्द्रित होते रहने पर उनकी सूक्ष्म चेतन शक्ति घनीभूत होती जाती है। प्रत्येक विचार आत्मा और बुद्धि के संसर्ग से पैदा होता है। बुद्धि उसका आकार-प्रकार निर्धारित करती है तो आत्मा उसमें चेतना फूँकती है। इस तरह विचार अपने आप में एक सजीव किन्तु सूक्ष्म तत्व है। मनुष्य के विचार एक तरह की सजीव तरंगें हैं जो जीवन, संसार और यहाँ के पदार्थों को प्रेरणा देती रहती हैं। इन सजीव विचारों का जब केन्द्रीयकरण हो जाता है तो एक प्रचण्ड शक्ति का उद्भव होता है। स्वामी विवेकानन्द ने विचारों की इस शक्ति का उल्लेख करते हुए बताया है "कोई व्यक्ति भले ही किसी गुफा में जाकर विचार करे और विचार करते-करते ही वह मर भी जाय, तो वे विचार कुछ समय उपरान्त गुफा की दीवारों का विच्छेद कर बाहर निकल पड़ेंगे, और सर्वत्र फैल जायेंगे। वे विचार तब उसको प्रभावित करेंगे।"

शाप, वरदान, भविष्यवाणी विचारों की इस सूक्ष्म शक्ति का ही परिणाम है। ऋषि-मुनियों के पूर्व स्थानों, तपोवनों में आज भी जाने पर वहाँ मनुष्य को उनके उत्कृष्ट शक्तिशाली विचारों का स्पर्श प्राप्त होता है। इतना ही नहीं भावना पूर्वक किसी भी महापुरुष से मानसिक सम्पर्क स्थापित किया जाय तो उसके विचार, भाव तत्क्षण वातावरण से दौड़कर आयेंगे और सचमुच मनुष्य को महापुरुष का मानसिक सत्सङ्ग मिलेगा।

मनुष्य जैसे विचार करता है उनकी सूक्ष्म तरंगें विश्वाकाश में फैल जाती हैं। सम स्वभाव के पदार्थ एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं, इस नियम के अनुसार उन विचारों के अनुकूल दूसरे विचार आकर्षित होते हैं और व्यक्ति को वैसी ही प्रेरणा देते हैं। एक ही तरह के विचार घनीभूत होते रहने पर प्रचण्ड शक्ति धारण कर लेते हैं और मनुष्य के जीवन में जादू की तरह प्रभाव डालते हैं।

जीवन के अन्य पहलुओं की तरह ही मनुष्य के स्वास्थ्य का बहुत कुछ सम्बन्ध उसके विचारों पर ही होता है। मनः शक्ति, विचार क्षण-क्षण मनुष्य

के स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते रहते हैं। लोग अपने आपको रोगी, बीमार, कम-जोर महसूस करते हैं उनका शरीर भी वैसा ही बन जाता है। शरीर एक यंत्र है जो विचारों के अनुसार मनः शक्ति की प्रेरणा से काम करता है। जैसे विचार होंगे वैसा ही प्रभाव शरीर पर दृष्टि गोचर होगा। हीन विचार, शोक चिन्ता आदि के कारण रक्त का प्रवाह मन्द हो जाता है और शरीर में जड़ता शिथिलता पैदा हो जाती है। दिल की धड़कन मन्द हो जाती है। स्नायु-संस्थान सुस्त हो जाता है। इसी तरह उत्तेजना, क्रोध, आवेश के विचारों से शरीर पर भारी तनाव पड़ता है। रक्तचाप बढ़ जाता है। शरीर में एक प्रकार का विष उत्पन्न होने लगता है। शरीर के सभी अङ्गों का कार्य अस्तव्यस्त हो जाता है। इस तरह के लोग जल्दी ही अस्वस्थ, होकर रोगी जीवन बिताते हैं। वैज्ञानिक खोजों के आधार पर यह सिद्ध हो गया है कि मनुष्य की बीमारी, अस्वस्थता का प्रधान कारण मानसिक स्थिति ही होती है। अपने आपको कम-जोर, रोगी, बीमार समझने वाले लोग सदैव अस्वस्थ ही रहते हैं।

विचारों का हमारे जीवन में महत्व पूर्ण स्थान है। अपने सुख, दुःख, हानि, लाभ, उन्नति अवनति, सफलता असफलता सभी कुछ हमारे अपने विचारों पर निर्भर करते हैं। जैसे विचार होते हैं वैसा ही हमारा जीवन बनता है। संसार कल्पवृक्ष है, इसकी छाया तले बैठकर हम जो भी विचार करेंगे वैसे ही परिणाम प्राप्त होंगे। जो अपने आपको सद्विचारों से भरे रखते हैं वे पद-पद पर जीवन के महान् वरदानों से विभूषित होते हैं, सफलता, महानता, सुख-शान्ति प्रसन्नता के परितोष उन्हें मिलते हैं। इसके विपरीत जो अपने आपको हीन, अभागा, बदनसीब समझते हैं उनका जीवन भी दीन-हीन बन जाता है। विचारों से गिरे हुए व्यक्ति को फिर परमात्मा भी नहीं उठा सकता। जो अन्धकार मय निराशावादी विचार रखते हैं उनका जीवन कभी उन्नत और उत्कृष्ट नहीं बन सकता। मनुष्य को वही मिलता है जैसे उसके विचार होते हैं।

विचारों में बड़ा जादू है। वे हमें उठा सकते हैं और गिरा भी देते हैं। आवश्यकता इस बात की है हमें आशावादी, उदार, दिव्य, पुरोगामी,

उत्कृष्ट विचारों से अपने मन को सराबोर रखना चाहिए। हीन और बुरे विचारों से छुटकारा पाने के लिए उच्च दिव्य विचारों का अभ्यास करना आवश्यक है। बुरे विचारों को सद्विचारों से काटना चाहिए।

जो कुछ करिये पहिले उस पर विचार कीजिये

संसार के ९० प्रतिशत दुःख का कारण केवल यह है कि मनुष्य जो कुछ करता है उस पर या तो विचार नहीं करता या विचार द्वारा किसी ठोस निष्कर्ष तक पहुँचने के पूर्व ही कार्य आरम्भ कर देता है। नासमझी से किये जाने वाले कामों के परिणाम भी भोंड़े अधूरे और दुःखदाई ही होते हैं। सन्त विनोबा का यह कथन नितान्त सत्य ही है कि "विचार का चिराग बुझ जाने से आचार अन्धा हो जाता है।" इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि कार्य के परिणाम पर कुछ सोचने से पूर्व ही यदि मनमाने ढङ्ग से या उतावली में कुछ करने लगें तो उससे विपरीत परिणाम ही उत्पन्न होते हैं। कई बार तो मनुष्य ऐसी उलझन में पड़ जाता है कि उसे यह भी सूझ नहीं पड़ता कि अब बचाव के लिये क्या किया जाय? इस दुःख से दुःखी होकर अधिकांश व्यक्ति अपनी शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों का अपव्यय किया करते हैं। किसी कार्य का आरम्भ करने के पूर्व यदि उसके व्यवहारिक पहलुओं पर विचार कर लिया जाय तो अनेक कठिनाइयों से बचा जा सकता है, शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों का अपव्यय रोका जा सकता है।

किसान इस बात को जानता है कि किसी खेत को कितनी बार पानी दे? उसकी जुताई कैसे और कितनी बार की जाय? उसकी घास, पात और निकाई कब हो? कौन-सा बीज किस ऋतु में बोने से फसल पैदा होगी? इन सभी संभावनाओं पर उसकी दृष्टि खुली हुई होती है तभी वह अच्छी पैदावार उगा पाता है। कार्तिक की फसल आषाढ़ में, आषाढ़ की कार्तिक में, सूखे-अनसूखे कैसे ही खेत में उल्टा-सीधा कोई भी बीज डाल देने से फसल हो जाना मुश्किल है। यदि किसी तरह हो भी जाय तो वह अच्छी भी न होगी और ठीक ढङ्ग से उपजाई गई फसल से बहुत ही घटिया किस्म की होगी।

मनुष्य भी एक तरह का किसान है जो संसार में कर्म की खेती करता है। विचार कर्म का बीज है, यदि उसे उपयुक्त समय, उपयुक्त वातावरण न मिले तो लाभ होने की अपेक्षा हानि होने की ही सम्भावना अधिक रहेगी। इन दिनों ऐसे कर्मों की बाढ़ सी आगई है जिन्हें लोग बिना विचार किये हुए करते हैं और जब उनके दुष्परिणाम भुगतने पड़ते हैं तो ईश्वर, भाग्य, समाज तथा सरकार पर तरह-तरह के आरोप लगाते रहते हैं। इतने पर भी उनका दुःख नष्ट नहीं होता, एक बार का उपजा कर्मफल चाहे वह दुःख दे या सुख उसे तो भुगतना ही पड़ता है।

सोचते भी हैं तो अपनी शक्ति और सामर्थ्य से बहुत बढ़ा-चढ़ाकर। किन्तु परिस्थितियों में एकाएक परिवर्तन तो हो नहीं जाता। कर्ज लिये हुए धन को चुकाने के लिए भी तो कमाई ही करनी पड़ेगी। फिर उस समय जब सारी कमाई ब्याज समेत उधाई में ही चली जायेगी तब अपना तथा बच्चों का क्या होगा? इन नासमझ लोगों का जीवन ही एक तरह से उधार हो जाता है। वे दूसरों का ही मुँह ताकते रहते हैं। अपनी शक्तियों का उपयोग कर कुछ अच्छी परिस्थिति प्राप्त करने की शक्ति व सामर्थ्य का उनमें अभाव होता है।

औंधे-सीधे कार्य जिनका कोई पूर्वाकार नहीं होता वे मनुष्य को कठिन दुःख देते हैं। चोरी, भ्रष्टाचार, नशेबाजी आदि बुरी आदतें भी ऐसी ही होती हैं जिनके परिणाम जाने बिना या जानकर भी धृष्टता पूर्वक लोग उन्हें व्यवहार में लाते हैं; इनके परिणाम बड़े कष्ट कर होते हैं। सबसे हानिकारक वस्तु अविचारिता ही है जिससे लोग गलत परिणाम भुगतते हैं।

इसलिये कोई भी कार्य करने के पूर्व उसे अच्छे बुरे दोनों दृष्टिकोणों से परखें। सोना खरीदा जाता है तो उसकी कीमत और असलियत दोनों पर विचार किया जाता है। इसी तरह कोई भी कार्य हो उससे लाभ क्या होगा इतना सोचने के बाद यदि वे लाभदायक हों और उनसे अनिष्ट की संभावनायें न दीख पड़ती हों तो ही उन्हें क्रिया रूप देना चाहिए। नशा करना है तो यह भी सोचिये कि उससे शरीर पर कितना बुरा प्रभाव पड़ता है और सामाजिक स्थिति पर उसकी कैसी प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। कुल मिलाकर

यदि उसमें लाभ दिखाई देता होता तब तो कोई भी उसे बुरा न कहता ? पर सभी देखते हैं नशा मनुष्य के धन को बरबाद करता है, तन फूंकता है और सामाजिक शांति व व्यवस्था को भंग करता है इन परिणामों का एक काल्पनिक रूप जो बना लेगा उसके लिए अपमान, अपव्यय तथा उत्तेजनाओं से बच सकना असंभव हो जायेगा। यह बात एक नशे में ही लागू नहीं होती। संसार का कोई भी कार्य हो उसकी अच्छी-बुरी परिस्थितियों पर विचार करने के उपरान्त ही उसे मूर्त रूप देना समझदारी की बात होगी। जो इस समझदारी को जितना अधिक व्यवहार में उतारेगा वह उतना ही सफल व्यक्ति बनेगा यह निश्चित है।

यह भी ध्यान रहे कि अपने स्वार्थ या सुख प्राप्ति को ही प्रमुख मानकर आप विचार न करने लग जायें अन्यथा उसकी बुराइयों की ओर आपका ध्यान भी नहीं जायेगा। विचार उभय पक्षीय तथा निष्पक्ष होना चाहिये। अपने सुखों के लिये प्रायः लोग ऐसा ही करते हैं कि वे उसके हानिकारक पहलू पर दृष्टिपात नहीं करते। जुआरी आदमी यही सोचता है कि वही सारा धन जीत लेगा, पर ऐसी मान्यता तो उनमें से प्रत्येक की होती है, यह कोई नहीं सोचता कि जीत तो एक की ही होगी, शेष तो सब हारने वाले ही हैं। "हारने वालों में मैं भी हो सकता हूँ" ऐसा जो सोच सकता है वह जरूर बुराइयों से और उनके बुरे परिणाम से बचता है। कोई भी विचार एकांगी होता है तभी बुराइयों को स्थान मिलता है, इसलिये हमारी विचार-शक्ति निष्पक्ष व सर्वांगीण होनी चाहिए।

किसी कार्य को केवल विचार पर भी न छोड़ देना चाहिए। कार्य रूप में परिणित हुए बिना योजनायें चाहे वे कितनी ही अच्छी क्यों न हों लाभ नहीं दे सकतीं। उन्हें क्रिया-रूप भी मिलना चाहिये। विचार की आवश्यकता वैसी ही है जैसी रेलगाड़ी को स्टेशन पार करने के लिए सिगनल की आवश्यकता होती है। सिगनल का उद्देश्य केवल यह है कि ड्राइवर यह समझलें कि रास्ता साफ है, अथवा आगे कुछ खतरा है ? विचारों के द्वारा भी ऐसे ही संकेत मिलते हैं कि यह कार्य उचित और उपयुक्त है या अनुचित और

अनुपयुक्त ? यह समझ आने पर उस विचार को क्रिया-रूप दे देना चाहिए । बुरे परिणाम की जहाँ आशङ्का हो उन कार्यों को छोड़कर शेष विचार आचरण में प्रयुक्त होने चाहिए तभी कोई काम बन सकता है । महात्मा गाँधी का कथन है—"आचरण रहित विचार कितने ही अच्छे क्यों न हों उन्हें खोटे सिक्के की तरह समझना चाहिए ।"

इससे यह सिद्ध होता है कि कोरा आचरण अपने आप में पूर्ण नहीं । इसी प्रकार केवल विचार से भी कोई काम नहीं बनता । आत्म-सफलता के लिये दोनों की आवश्यकता समान रूप से है । कबीरदास की यह सम्मति किसी विचारक की शिक्षा से कम महत्वपूर्ण नहीं कि—

आचरण सब जग मिला, मिला विचारी न कोय ।
कोटि अचारी वारिये एक विचारी जो होय ।।

अर्थात्—"इस संसार में आचरण करने वाले बहुत हैं पर उस पर विचार करने वाले बहुत कम हैं । जो मनुष्य विचारपूर्वक कार्य करता है वह केवल आचरण करने वाले हजार पुरुषों से अच्छा है ।"

यह उद्बोधन सांसारिक सफलता, सामाजिक व्यवस्था तथा नैतिक सदाचरण सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण है कि मनुष्य कुछ करने के पूर्व उस पर विचार कर लिया करे । भली प्रकार विचार किये हुये कर्म सद्य फलकारी होते हैं उनसे ठोस लाभ मनुष्य जाति को मिलते हैं । बिना विचार किये हुये जो काम करते हैं उन्हें बाद में पश्चात्ताप ही भुगतना पड़ता है ।

विचारशक्ति और उसका उपयोग

मनुष्य प्राणी में जो विशेषता अन्य प्राणियों से विशेष दिखाई पड़ती है वह उसकी विचारशक्ति ही है । वह इस विचारशक्ति को जिस दिशा में प्रयुक्त करता है उधर ही आश्चर्यजनक सफलता उपलब्ध होने लगती है । विचार इस की सबसे शक्तिशाली, सबसे प्रचण्ड शक्ति है । चिन्तन की शोध द्वारा अनेकों प्रकार की रहस्यमय प्राकृतिक शक्तियों को जानने और उनको यथावर्ती बनाने में सफलता प्राप्त की गई है, इस शोध-कार्य में सारा श्रेय मानव विचार शक्ति

का ही है। ये प्रकृति शक्तियाँ तो अनादि काल से इस सृष्टि में मौजूद थीं पर उनको उपलब्ध कर सकना तभी सम्भव हुआ जब विचारशक्ति की दौड़ उनके शोध क्षेत्र तक पहुँची।

विचारशक्ति के विशाल क्षेत्र—के द्वारा ही वाणी, भाषा, लिपि, संगीत, अग्नि का उपयोग, कृषि, पशु पालन, जल-तरण, वस्त्र निर्माण, धातु-प्रयोग, मकान बनाने, संगठित रहने, सामूहिक सुविधा की धर्म संहिता पर चलने, रोगों की चिकित्सा करने, जैसे अनेकों महत्वपूर्ण आविष्कार मनुष्य ने अब तक किये और उनके द्वारा अपनी स्थिति को देवोपम बनाया है। मनुष्य अन्य प्राणियों की तुलना में अत्यधिक विभूतिवान है। हम देवताओं के सुखों के बारे में सोचते हैं कि मनुष्य की अपेक्षा उन्हें असंख्य गुने सुख साधन प्राप्त हैं। धरती के प्राणी भी यदि यह सोच सकें कि उनमें और मनुष्य की सुविधाओं में कितना अन्तर है तो हमें उससे कहीं अधिक सुख सुविधा से सम्पन्न मानेंगे जितना कि हम अपनी तुलना में देवताओं को मानते हैं। यह देवोपम स्थिति हमने अपनी विचारशक्ति की विशेषता के कारण, उसके विकास और प्रयोग के कारण ही उपलब्ध की है।

इस विचारशक्ति को जीवन की जिस दिशा में जितनी मात्रा में लगाना आरम्भ कर दिया जाता है हमें उस दिशा में उतनी ही सफलता मिलने लगती है। विज्ञान की शोध, अस्त्र-शस्त्रों की सुसज्जा, उत्पादन, राजनीति, शिक्षा, चिकित्सा आदि जिन कार्यों में भी हमारा ध्यान लगा हुआ है उनमें तीव्रगति से प्रगति दृष्टिगोचर हो रही है और यदि ध्यान इन कार्यों में केन्द्रीभूत ही इसी प्रकार लगा रहा तो भविष्य में उस ओर उन्नति भी आशाजनक होगी निश्चित है पिछले दिनों में अपनी आकांक्षाओं को सुव्यवस्थित रूप में केन्द्रीभूत करके रूस और अमेरिका बहुत कुछ कर चुके हैं। हमारी आकांक्षा एवं विचार धारा अपने लक्ष्य पर जहाँ भी तन्मयता के साथ संलग्न रहेंगी वहाँ सफलता की उपलब्धि असंदिग्ध है। विचारशक्ति को एक जीवित जादू कहा जा सकता है। उसके स्पर्श होने से निर्जीव मिट्टी, मनताभिराम, खिलौने

के रूप में और प्राणघातक विष, जीवन दायी रसायन के रूप में बदल जाता है ।

हम दिन भर सोचते हैं, नाना प्रकार की समस्याओं के समझने और हल करने में अपनी विचार शक्ति को लगाते हैं । ईश्वर ने मस्तिष्क रूपी ऐसा देवता इस शरीर में टिका दिया है जो हमारी आकांक्षा की पूर्ति में निरन्तर सहायता करता रहता है । इस देवता से हम जो मांगते हैं वह उसे प्राप्त करने की व्यवस्था कर देता है । विचारशक्ति इस जीवन की सबसे बड़ी शक्ति है । इसे कामधेनु और कल्पलता कह सकते हैं । प्रगति के पथ पर इस महान सम्बल के आधार पर ही मनुष्य आगे बढ़ सका है । यह शक्ति यदि जीवन में उपस्थित उलझनों का स्वरूप समझने और उसका निराकरण करने में लगे तो निस्सन्देह उसका भी हल निकल सकता है । निस्सन्देह इन विक्षोभ की परिस्थितियों के बदलने का मार्ग भी मिल सकता है ।

कितने दुख की बात है कि छोटी-छोटी बातों में हमारी विचार शक्ति इतनी उलझी रहती है कि आत्म-चिन्तन और आत्म-निरीक्षण के लिए समय ही नहीं मिलता । जीवन के वास्तविक स्वरूप उसके उद्देश्य और कार्यक्रम के समझने सोचने और उसके अनुरूप गतिविधियों का निर्माण करने की दिशा में हम प्रायः भूले ही रहते हैं और बच्चों के छोटे खेलों की तरह शरीर से सम्बन्धित बहुत ही तुच्छ समस्याओं को पर्वत के समान मानकर अपना सारा मानसिक संस्थान उसी में उलझाये रहते हैं ।

हम जितना बेकार बातों पर अपना सिर खपाते हैं, उसका आधा चौथाई भी जीवनोद्देश्य को समझने और उसके अनुसार अपनी गति विधि निर्धारित करने में लगा पाते तो वह सब हमें इसी जीवन में मिल जाता जिसके लिए यह सुर दुर्लभ मानव शरीर प्राप्त हुआ है । विचारों को शक्ति का प्रचण्ड स्रोत ही कहना चाहिए । उनका यदि सदुपयोग किया जाय तो प्रतिफल सब प्रकार श्रेयस्कर ही होगा । धन को जिस कार्य में खर्च किया जाता है वही आकर्षक बन जाता है । इसी प्रकार विचारों को जिस भी दिशा में लगा दिया जाय उसी ओर प्रगति होने लगती है और सफलता का मार्ग प्रशस्त दिखाई

देने लगता है। किन्तु यदि कुकल्पनाऐं करते रहा जाय, शत्रुता, ईर्ष्या, द्वेष, निराशा, कामुकता जैसी अनुपयुक्त दिशा में अपने विचारों को लगाया जाता रहे तो इसका परिणाम शक्तियों के अपव्यय के साथ-साथ अपने लिए सब प्रकार अहितकर ही होगा।

विचारों की रचनाशक्ति प्रचण्ड है। जो कुछ मन सोचता है, बुद्धि उसे प्राप्त करने में, उसके साधन जुटाने में लग जाती है। धीरे-धीरे वैसी ही परिस्थिति सामने आने लगती है, दूसरे लोगों का वैसा ही सहयोग भी मिलने लगता है और धीरे-धीरे वैसा ही वातावरण बन जाता है, जैसा कि मन में विचार प्रवाह उठा करता है। भय, चिन्ता और निराशा में डूबे रहने वाले मनुष्य के सामने ठीक वैसी ही परिस्थितियाँ आ जाती हैं जैसी कि वे सोचते रहते हैं। चिन्ता एक प्रकार का मानसिक रोग है जिससे लाभ कुछ नहीं, हानि ही हानि की सम्भावना रहती है। चिन्तित और विक्षुब्ध मनुष्य अपनी मानसिक क्षमता खो बैठता है। जो वह सोचता है, जो करना चाहता है, वह प्रयत्न गलत ही होता है। उसके निर्णय अदूरदर्शिता पूर्ण और अव्यवहारिक सिद्ध होते हैं। उलझनों को सुलझाने के लिए सही मार्ग तभी निकल सकता है जबकि सोचने वाले का मानसिक स्तर सही और शान्त हो। उत्तेजित अथवा शिथिल मस्तिष्क तो ऐसे ही उपाय सोच सकता है जो उलटे मुसीबत बढ़ाने वाले परिणाम उत्पन्न करें।

विचारों को आशान्वित रखना चाहिए और उन्हें सदा रचनात्मक दिशा में लगाये रहना चाहिए। आज जो साधन और सुविधाऐं प्राप्त हैं उन्हीं के सहारे कल प्रगति के लिए क्या किया जा सकता है, इतना सोचना पर्याप्त है। बड़े साधन इकट्ठे होने पर बड़े कार्य करने की कल्पनाऐं निरर्थक हैं। जो कार्य आज हम नहीं कर सकते उसके लिए माथा-पच्ची क्यों की जाय? उद्देश्य ऊँचे रखने चाहिये, लक्ष्य बड़े से बड़ा रखा जा सकता है पर यह न भुला दिया जाय कि आज हम कहाँ हैं? आज की परिस्थिति का समझना और उसी आधार पर आगे बढ़ने की बात सोचना सही व्यवहारिक बुद्धिमत्ता है। भविष्य के सम्बन्ध में आशा करते ही रहना चाहिए। जो आपत्तियाँ और असफलता

की बात ही सोचेगा उसे कभी सुअवसर प्राप्त नहीं हो सकते । प्रगतिशील जीवन बना सकना उन्हीं के लिए सम्भव होता है जो प्रगतिशील ढङ्ग से सोचते हैं और अपनी मानसिक शक्ति को रचनात्मक दिशा में संलग्न किये रहते हैं ।

विचार ही चरित्र निर्माण करते हैं

जो विचार देर तक मस्तिष्क में बना रहता है, वह अपना एक स्थायी स्थान बना लेता है । वही स्थायी विचार मनुष्य का संस्कार बन जाता है । संस्कारों का मानव-जीवन में बहुत महत्व है । सामान्य-विचार कार्यान्वित करने के लिये मनुष्य को स्वयं प्रयत्न करना पड़ता है, किन्तु संस्कार उसको यन्त्रवत् संचालित कर देता है । शरीर-यन्त्र, जिसके द्वारा सारी क्रियायें सम्पादित होती हैं, सामान्य विचारों के अधीन नहीं होता । इसके विपरीत उस पर संस्कारों का पूर्ण आधिपत्य होता है । न चाहते हुए भी, शरीर-यन्त्र संस्कारों की प्रेरणा से हठात् सक्रिय हो उठता है और तदनुसार आचरण प्रतिपादित करता है । मानव-जीवन में संस्कारों का बहुत महत्व है । इन्हें यदि मानव-जीवन का अधिष्ठाता और आचरण का प्रेरक कह दिया जाय तब भी असङ्गत न होगा ।

केवल विचार मात्र ही मानव चरित्र के प्रकाशक प्रतीक नहीं होते । मनुष्य का चरित्र विचार और आचार दोनों से मिलकर बनता है । संसार में बहुत से ऐसे लोग पाये जा सकते हैं जिनके विचार बड़े ही उदात्त, महान् और आदर्शपूर्ण होते हैं, किन्तु उनकी क्रियायें उसके अनुरूप नहीं होतीं । विचार पवित्र हों और कर्म अपावन तो वह सच्चरित्रता नहीं हुई । इसी प्रकार बहुत से लोग ऊपर से बड़े ही सत्यवादी, आदर्शवादी और धर्म-कर्म वाले दीखते हैं, किन्तु उनके भीतर कलुषपूर्ण विचारधारा बहती रहती है । ऐसे व्यक्ति भी सच्चे चरित्र वाले नहीं माने जा सकते । सच्चा चरित्रवान् वही माना जायेगा और वास्तव में वही होता भी है, जो विचार और आचार दोनों को समान रूप से उच्च और पुनीत रखकर चलता है ।

चरित्र मनुष्य की सर्वोपरि सम्पत्ति है । विचारकों का कहना है—"धन चला गया, कुछ नहीं गया । स्वास्थ्य चला गया, कुछ चला गया । किन्तु यदि चरित्र चला गया तो सब कुछ चला गया ।" विचारकों का यह कथन शतप्रतिशत भाव से अक्षरशः सत्य है । गया हुआ धन वापस आ जाता है । नित्य प्रति संसार में लोग धनी से निर्धन और निर्धन से धनवान् होते रहते हैं । धूप-छाँव जैसी धन अथवा अधन की इस स्थिति का जरा भी महत्त्व नहीं है । इसी प्रकार रोगों, व्याधियों और चिन्ताओं के प्रभाव से लोगों का स्वास्थ्य बिगड़ता और तदनुकूल उपायों द्वारा बनता रहता है । नित्य प्रति अस्वास्थ्य के बाद लोग स्वस्थ होते देखे जा सकते हैं । किन्तु गया हुआ चरित्र दुबारा वापस नहीं आता । ऐसी बात नहीं कि गिरे हुए चरित्र के लोग अपना परिष्कार नहीं कर सकते । दुश्चरित्र व्यक्ति भी सदाचार, सद्विचार और सत्संग द्वारा चरित्रवान् बन सकता है । यद्यपि वह अपना वह असंदिग्ध विश्वास नहीं पा पाता, चरित्रहीनता के कारण जिसे वह खो चुका होता है ।

समाज जिसके ऊपर विश्वास नहीं करता; लोग जिसे सन्देह और शंका की दृष्टि से देखते हों, चरित्रवान् होने पर भी उसके चरित्र का कोई मूल्य, महत्त्व नहीं है । वह अपनी निज की दृष्टि में भले ही चरित्रवान् बना रहे । यथार्थ में चरित्रवान् वही है, जो अपने समाज, अपनी आत्मा और अपने परमात्मा की दृष्टि में समान रूप से असंदिग्ध और सन्देह रहित हो । इस प्रकार की मान्य और निःशंक चरित्रमत्ता ही वह आध्यात्मिक स्थिति है, जिसके आधार पर सम्मान, सुख, सफलता और आत्म-शान्ति का लाभ होता है । मनुष्य को अपनी चारित्रिक महानता की अवश्य रक्षा करनी चाहिए । यदि चरित्र चला गया तो मानो मानव जीवन का सब कुछ चला गया ।

धन और स्वास्थ्य भी मानव-जीवन की सम्पत्तियाँ हैं—इसमें सन्देह नहीं । किन्तु चरित्र की तुलना में वह नगण्य हैं । चरित्र के आधार पर धन और स्वास्थ्य तो पाये जा सकते हैं किन्तु धन और स्वास्थ्य के आधार पर चरित्र नहीं पाया जा सकता । यदि चरित्र सुरक्षित है, समाज में विश्वास बना है तो मनुष्य अपने परिश्रम और पुरुषार्थ के बल पर पुनः धन की प्राप्ति कर

सकता है। चरित्र में यदि रहता है, सन्मार्ग का त्याग नहीं किया गया है तो उसके आधार पर संयम, नियम और आचार-प्रकार के द्वारा खोया हुआ स्वास्थ्य फिर वापस बुलाया जा सकता है। किन्तु यदि चारित्रिक विशेषता का ह्रास हो गया है, तो इनमें से एक की भी क्षति पूर्ति नहीं की जा सकती। इसलिये चरित्र का महत्त्व धन और स्वास्थ्य दोनों से ऊपर है। इसलिये विचारकों ने यह घोषणा की है, कि—"धन चला गया, तो कुछ नहीं गया। स्वास्थ्य चला गया तो कुछ चला गया। किन्तु यदि चरित्र चला गया तो सब कुछ चला गया।"

मनुष्य के चरित्र का निर्माण संस्कारों के आधार पर होता है। मनुष्य जिस प्रकार के संस्कार संचय करता रहता है, उसी प्रकार चरित्र ढलता रहता है। अस्तु अपने चरित्र का निर्माण करने के लिये मनुष्य को अपने संस्कारों का निर्माण करना चाहिये। संस्कार, मनुष्य के उन विचारों के ही प्रौढ़ रूप होते हैं, जो दीर्घकाल तक रहने से मस्तिष्क में अपना स्थायी स्थान बना लेते हैं। यदि सद्विचारों को अपनाकर उनका ही चिन्तन और मनन किया जाता रहे तो मनुष्य के संस्कार शुभ और सुन्दर बनेंगे। इसके विपरीत यदि असद्-विचारों को ग्रहण कर मस्तिष्क में बसाया और मनन किया जायेगा तो संस्कारों के रूप में कूड़ा-कर्कट ही इकट्ठा होता जायेगा।

विचारों का निवास चेतन मस्तिष्क और संस्कारों का निवास अव-चेतन मस्तिष्क में रहता है। चेतन मस्तिष्क प्रत्यक्ष और अवचेतन मस्तिष्क अप्रत्यक्ष अथवा गुप्त होता है। यही कारण है कि कभी-कभी विचारों के विप-रीत क्रिया हो जाया करती हैं। मनुष्य देखता है कि उसके विचार अच्छे और सदाशयी हैं, तब भी उसकी क्रियायें उसके विपरीत हो जाया करती हैं। इस रहस्य को न समझने के कारण कभी-कभी वह बड़ा व्यग्र होने लगता है। विचारों के विपरीत कार्य हो जाने का रहस्य यही होता है कि मनुष्य की क्रिया प्रवृत्ति पर संस्कारों का प्रभाव रहता है और गुप्त मन में छिपे रहने से उनका पता नहीं चल पाता। संस्कारों को व्यर्थ कर अपने अनुसार मनुष्य की क्रियायें प्रेरित कर दिया करते हैं। जिस प्रकार पानी के ऊपर दीखने वाले छोटे से कमल पुष्प का मूल पानी के तल में कीचड़ में छिपा रहने से नहीं

दीखता, उसी प्रकार परिणाम रूप क्रिया का मूल संस्कार अवचेतन मन में छिपा होने से नहीं दीखता।

कोई-कोई विचार ही तात्कालिक क्रिया के रूप में परिणत हो पाता है अन्यथा मनुष्य के वे ही विचार क्रिया के रूप में परिणत होते हैं, जो प्रौढ़ होकर संस्कार बन जाते हैं। वे विचार जो जन्म के साथ ही क्रियान्वित हो जाते हैं, प्रायः संस्कारों के जाति के ही होते हैं। संस्कारों से भिन्न तात्कालिक विचार कदाचित् ही क्रिया के रूप में परिणत हो पाते हैं, बशर्ते कि वे संस्कार के रूप में परिपक्व न हो गये हों। वे संतुलित तथा प्रौढ़ मस्तिष्क वाले व्यक्ति अपने अवचेतन मस्तिष्क को पहले से ही उपयुक्त बनाये रहते हैं, जो अपने तात्कालिक विचारों को क्रिया रूप में बदल देते हैं। इसका कारण इसके सिवाय और कुछ नहीं होता है कि उनके संस्कारों और प्रौढ़ विचारों में भिन्नता नहीं होती—एक साम्य तथा अनुरूपता होती है।

संस्कारों के अनुरूप मनुष्य का चरित्र बनता है और विचारों के अनुरूप संस्कार। विचारों की एक विशेषता यह होती है कि यदि उनके साथ भावनात्मक अनुभूति का समन्वय कर दिया जाता है तो वे न केवल तीव्र और प्रभावशाली हो जाते हैं, बल्कि शीघ्र ही पक कर संस्कारों का रूप धारण कर लेते हैं। किन्हीं विषयों के चिन्तन के साथ यदि मनुष्य की भावनात्मक अनुभूति जुड़ जाती है तो वह विषय मनुष्य का बड़ा प्रिय बन जाता है। यही प्रियता उस विषय को मानव-मस्तिष्क पर हर समय प्रतिबिम्बित बनाये रहती है। फलतः उन्हीं विषयों में चिन्तन, मनन की प्रक्रिया भी अबाधगति से चलती रहती है और वह विषय अवचेतन में जा-जाकर संस्कार रूप में परिणत होते रहते हैं। इसी नियम के अनुसार बहुधा देखा जाता है कि अनेक लोग, जो कि प्रियता के कारण भोग-वासनाओं को निरन्तर चिन्तन से संस्कारों में सम्मिलित कर लेते हैं, बहुत कुछ पूजा-पाठ, सत्संग और धार्मिक साहित्य का अध्ययन करते रहने पर भी उनसे मुक्त नहीं हो पाते। वे चाहते हैं कि संसार के नश्वर भोगों और अकल्याण कर वासनाओं से विरक्ति हो जायें, लेकिन उनकी यह चाह पूरी नहीं हो पाती।

धर्म-कर्म और विरक्ति भाव में रुचि होते पर भी भोग वासनायें उनका साथ नहीं छोड़ पातीं। विचार जब तक संस्कार नहीं बन जाते मानव-वृत्तियों में परिवर्तन नहीं ला सकते। संस्कार रूप भोग वासनाओं से छूट सकना तभी सम्भव होता है जब अखण्ड प्रयत्न द्वारा पूर्व संस्कारों को धूमिल बनाया जाये और वाञ्छनीय विचारों को भावनात्मक अनुभूति के साथ, चिन्तन-मनन और विश्वास के द्वारा संस्कार रूप में प्रौढ़ और परिपुष्ट किया जाय। पुराने संस्कार बदलने के लिये नये संस्कारों की रचना परमावश्यक है।

चरित्र मानव जीवन की सर्वश्रेष्ठ सम्पदा है। यही वह धुरी है, जिस पर मनुष्य का जीवन सुख-शान्ति और मान-सम्मान की अनुकूल दिशा अथवा दुःख-दारिद्रय तथा अशान्ति, असन्तोष की प्रतिकूल दिशा में गतिमान होता है। जिसने अपने चरित्र का निर्माण आदर्श रूप में कर लिया उसने मानो लौकिक सफलताओं के साथ पारलौकिक सुख-शान्ति की सम्भावनायें स्थिर कर लीं और जिसने अन्य नश्वर सम्पदाओं के माया मोह में पड़ कर अपनी चारित्रिक सम्पदा की उपेक्षा कर दी उसने मानो लोक से लेकर परलोक तक के जीवन-पथ में अपने लिये नारकीय पड़ाव का प्रबन्ध कर लिया। यदि सुख की इच्छा है तो चरित्र का निर्माण करिये। धन की कामना है तो आचरण ऊँचा करिये, स्वर्ग की वाञ्छा है तो भी चरित्र को देवोपम बनाइये और यदि आत्मा, परमात्मा अथवा मोक्ष मुक्ति की जिज्ञासा है तो भी चरित्र को आदर्श एवं उदात्त बनाना होगा। जहाँ चरित्र है वहाँ सब कुछ है, जहाँ चरित्र नहीं वहाँ कुछ भी नहीं। भले ही देखने-सुनने के लिये भण्डार के भण्डार क्यों न भरे पड़े हों।

चरित्र की रचना संस्कारों के अनुसार होती है और संस्कारों की रचना विचारों के अनुसार। अस्तु आदर्श चरित्र के लिये, आदर्श विचारों को ही ग्रहण करना होगा। पवित्र कल्याणकारी और उत्पादक विचारों को चुन-चुनकर अपने मस्तिष्क में स्थान दीजिये। अकल्याणकर दूषित विचारों को एक क्षण के लिये भी पास मत आने दीजिये। अच्छे विचारों का ही चिन्तन और मनन करिये। अच्छे विचार वालों से संपर्क करिये, अच्छे विचारों का साहित्य पढ़िये और इस प्रकार हर ओर से अच्छे विचारों से ओत-प्रोत हो जाइये।

कुछ ही समय में आपके उन शुभ विचारों से आपकी रागात्मक अनुभूति जुड़ जायेगी, उसके चिन्तन-मनन में निरन्तरता आ जायेगी, जिसके फलस्वरूप वे मांगलिक विचार चेतन मस्तिष्क से अवचेतन मस्तिष्क में संस्कार बन-बनकर संचित होने लगेंगे और तब उन्हीं के अनुसार आपका चरित्र निर्मित और आपकी क्रियायें स्वाभाविक रूप से आपसे आप संचालित होने लगेंगी । आप एक आदर्श चरित्र वाले व्यक्ति बनकर सारे श्रेयों के अधिकारी बन जायेंगे ।

विचारों की उत्तमता ही उन्नति का मूलमन्त्र है

यदि आप उन्नति नहीं कर पा रहे हैं, आपका उद्योग असफल होता जा रहा है, तो अवश्य ही आप निराशा पूर्ण प्रतिकूल विचारों के बीमार हैं । आप काम करते हैं किन्तु विश्वास के साथ, सफलता के लिए उद्योग करते हैं तो असफलता की शंका के साथ, भविष्य की ओर देखते हैं तो निराशा दृष्टिकोण से । अन्यथा कोई कारण नहीं कि मनुष्य प्रयत्न करे और सफल न हो । जीवन भर प्रयत्न करते रहिये, पुरुषार्थ एवं उद्योग में जिन्दगी लगा दीजिए किन्तु तब तक कदापि सफल न होंगे, जब तक अपने अनिष्ट चिंतन के रोग से अपने को मुक्त करके उसके स्थान पर विश्वास पूर्ण विचारों की स्थापना नहीं करेंगे ।

सर्व शक्तिमान का अंश होने से मनुष्य में उसकी वे सारी विशेषतायें उसी तरह रहती हैं जिस प्रकार बिंदु में सिंधु की विशेषतायें । मनुष्य की शक्ति अतुलनीय है । अपनी इस शक्ति का ठीक-ठीक सदुपयोग करके वह सब कुछ कर सकता है, जीवन में एक उल्लेखनीय सफलता पा सकना तो उसके लिये साधारण-सी बात है । किन्तु खेद है कि अधिकतर लोग अपनी शक्ति का उपयुक्त उपयोग नहीं करते अथवा उसे क्षुद्र एवं तुच्छ बातों में नष्ट कर डालते हैं ।

/ मनुष्य की यह शक्ति उसके विचारों में ही निहित रहती है/। जिसके विचार सत्य-शिव एवं सुन्दर रहते हैं, उसकी गति संसार का कोई भी अवरोध नहीं रोक सकता । वह अपने निर्धारित लक्ष्य तक अवश्य पहुँचेगा, यह ध्रुव

सत्य है। इसके विपरीत विश्वास करने वालों को समझ लेना चाहिये कि वे विचार विपर्यय के रोगी हैं और इस बात की आवश्यकता है कि उनका मानसिक उपचार हो।

संसार की यह अद्‌भुत उन्नति, सुविधा एवं साधनों का यह भण्डार तथा सभ्यता, संस्कृति, साहित्य तथा कला-कौशल का विपुल विकास मानवीय शक्ति के ही तो परिचायक हैं। बड़े-बड़े कल कारखाने विलक्षण वाहन और वैज्ञानिक खोजें व आविष्कार मनुष्य शक्ति की महानता की ही तो घोषणा करते हैं। इन सब प्रमाणों को पाकर भी जो मनुष्य, मनुष्य की शक्तियों में विश्वास करने और यह मानने को तैयार नहीं कि पृथ्वी का यह प्राणी सब कुछ कर सकने में समर्थ है तो उसे बुद्धिमानों की कोटि में नहीं रखा जा सकता। इस प्रकार का अखण्ड विश्वास लेकर चलने वाले ही आज तक जीवन में सफलता पा सके हैं और इसी प्रकार के विचारवान व्यक्ति ही आगे सफलता प्राप्त भी कर सकेंगे। जिसे अपने में, मनुष्य की शक्तियों में विश्वास ही नहीं, उसकी शक्तियाँ उस जैसे अविश्वासी व्यक्ति का साथ भी क्यों देने लगीं और तब ऐसी दशा में सफलता के लिये जिज्ञासु होना अनुचित एवं असङ्गत है।

विचारों की विकृति ही दुर्भाग्य एवं विचारों की सुकृति ही सौभाग्य है। विचारों के बाहर दुर्भाग्य अथवा सौभाग्य का कोई स्थान नहीं है। मनुष्य का भाग्य लिखने वाली विचारों के अतिरिक्त अन्य कोई शक्ति भी नहीं है। मनुष्य अपने विचारों के माध्यम से स्वयं अपना भाग्य लिखा करता है। जिस प्रकार के विचार होंगे, भाग्य की भाषा भी उसी प्रकार की होगी। जिसके विचार उन्नत, उज्ज्वल एवं उत्पादक होंगे, उसके भाग्य में सफलता, सम्पन्नता एवं श्रेय लिख जायेंगे, इसके विपरीत जिसके विचार क्षुद्र, तुच्छ, थोथे, मलीन अथवा निम्न कोटि के होंगे, उसकी भाग्य लिपि तीन अक्षरों के 'नरक' शब्द में ही पूरी हो जायेगी। सौभाग्य एवं श्रेय प्राप्त करना है तो विचारों को अनुरूप बनाना ही होगा। इसके अतिरिक्त जीवन में उन्नति करने का दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

भाग्य यदि कोई निश्चित विधान होता और उसका रचने वाला भी कोई दूसरा होता, तो कंगाली एवं गरीबी की दुर्भाग्य पूर्ण स्थिति में जन्म लेने वाला कोई भी मनुष्य आज तक उन्नति एवं विकास के पथ पर चलकर सौभाग्यवान न बना होता। उसे तो निश्चित भाग्यदोष से यथा स्थिति में ही मर खपकर चला जाना चाहिये था। किन्तु सत्य इसके विपरीत देखने में आता है। बहुतायत ऐसे ही लोगों की है जो गरीबी से बढ़कर ऊँची स्थिति में पहुँचे हैं, कठिनाइयों को पार करके ही श्रेयवान बने हैं। महापुरुषों के उदाहरणों से इस बात में कोई शंका नहीं रह जाती कि भाग्य न तो कोई निश्चित विधान है और न उसका रचयिता ही कोई दूसरा है। विचारों की परिणति ही का दूसरा नाम भाग्य है जिसका कि विधायक मनुष्य स्वयं ही है। सद्विचारों का सृजन कीजिए, उन्नत विचारों का उत्पादन करिये, आप अवश्य भाग्यवान बनकर श्रेय प्राप्त करेंगे।

विचारों का प्रभाव मनुष्य के आचार पर अवश्य पड़ता है। बल्कि यों कहना चाहिये कि आचार विचारों का ही क्रियात्मक रूप है। क्रिया सम्पन्न करने वाले मनुष्य की कोई अपनी गति नहीं, इन्द्रियां विचारों की ही अनुगामिनी रहती हैं। जिस दिशा में मनुष्य के विचार चलते हैं, शरीर भी उसी दिशा में गतिशील हो उठता है। इसका कारण विचार वैचित्र्य ही है कि एक जैसा शरीर पाने वाले मनुष्यों में से कोई परमार्थ और कोई अनर्थ की ओर अग्रसर होता है। एक ही प्रकार की शक्ति तथा बुद्धि व विवेक-तत्व पाने वालों में से किसी का विश्राम की ओर और किसी का व्यापार की ओर उन्मुख होना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि मनुष्य अपनी विचारधारा के अनुसार ही जीवन का पथ प्रशस्त करता है। एक ही माता-पिता के दो पुत्रों में से एक का सदाचारी और दूसरे का दुराचारी बन जाने का कारण उनकी अपनी-अपनी विचार-धारा ही होती है। इस सत्य में किसी प्रकार के सन्देह की गुन्जायश नहीं है कि आचार मनुष्य के विचारों का ही क्रियात्मक रूप है।

सफलता एवं श्रेय के महत्वाकांक्षी व्यक्ति अपने पास प्रतिकूल विचारों को एक क्षण भी नहीं ठहरने देते। बड़ी से बड़ी आपत्ति आ जाने और संकट

का सामना हो जाने से वे न तो कभी यह सोचते हैं कि उनका भाग्य खोटा है, आया हुआ सङ्कट उन्हें नष्ट कर देगा, उनमें इतनी शक्ति नहीं कि वे इस आपत्ति से लोहा ले सकें। निषेधात्मक ढंग से सोचने के बजाय वे इस प्रकार विधेयात्मक ढंग से ही सोचा करते हैं कि आने वाला संकट उनकी शक्ति की तुलना में तुच्छ है, वे उसका सफलता पूर्वक सामना कर सकते हैं, उनमें इतनी बुद्धि, इतना विवेक अवश्य है कि वे अपनी समस्या को अवश्य सुलझा सकते हैं। श्रेय पथ पर उनकी गति को कोई भी नहीं रोक सकता है। वे संसार में श्रेय एवं सफलता प्राप्त करने के लिये ही भेजे गये हैं, परिस्थितियों से परास्त होने, उन्हें आत्म समर्पण करने के लिये नहीं। अपने इन विधायक विचारों के बल पर ही, कठिनाइयों एवं संकटों को पारकर संसार के प्रसिद्ध पुरुषों ने श्रेय एवं सफलता प्राप्त की है।

निषेधात्मक विचार रखने से मनुष्य की सारी शक्तियाँ नकारात्मक होकर कुण्ठित हो जाती हैं, उसका आत्म-विश्वास नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार सृजनात्मक विचारों में संजीवनी का समावेश रहता है ठीक इसके विपरीत ध्वंसक विचारों में विष का प्रभाव रहता है जो मनुष्य की सारी क्षमताओं को जलाकर रख देता है।

अपने भाग्य का आप निर्माता होते हुए भी मनुष्य अपनी वैचारिक त्रुटियों के कारण दुर्भाग्य का शिकार बन जाता है? अपने क्षुद्र विचारों के अनुसार ही वह अपने को तुच्छ एवं हेय बना लिया करता है। उसके विचार उसके व्यक्तित्व को घेरे हुए जन-जन को इस बात की सूचना देते रहते हैं कि यह व्यक्ति निराशावादी एवं गलीज मनस्थों का है। ऐसे कुविचारी व्यक्ति के पास वह ओज तेज नहीं रहने पाता जो दूसरों को प्रभावित करने में सहायक हुआ करता है? क्षुद्र विचारों का व्यक्ति समाज में क्षुद्र स्थिति ही पा सकता है।

हम अपने को जिस प्रकार का बनाना चाहते हैं अपने अन्दर उसी प्रकार के विचारों का सृजन करना होगा। उसके अनुरूप विचारों का ही मनन एवं चिन्तन हमको मनोवांछित साँचे में ढाल सकता है। विचारों का प्रभाव

आचरण पर पड़ता है और आचरण ही मनुष्य को मनोरूप सफलताओं का संचालक होता है। यदि हम समाज में प्रतिष्ठा तथा संसार में प्रसिद्धि के इच्छुक हैं तो हमें सबसे पहले अपने विचारों, भावनाओं तथा चिन्तन को स्वार्थ की संकुचित सीमा से बढ़ाकर विशालता तक विस्तरित करना होगा। यदि हम क्षुद्रताओं के जाल में ही पड़े रहे सङ्कीर्णता के गढ़े से अपने विचारों का उद्धार न किया तो निश्चय जानिये हमारी महानता की इच्छा एक स्वप्न ही बनी रहेगी। क्षुद्र विचारों से प्रेरित होकर कोई क्षुद्र आचारण ही कर सकता है. तब ऐसी स्थिति में प्रतिष्ठा अथवा प्रसिद्धि का स्वप्न किस प्रकार पूरा हो सकता है।

निषेधात्मक अथवा निराशा पूर्ण विचार वाले लोग प्रतिष्ठा एवं प्रसिद्धि पा सकना तो दूर अपने सामान्य जीवन में भी सुखी एवं सन्तुष्ट नहीं रह सकते। उनके हीन विचार उन्हें तो उन्नति नहीं ही करने देंगे, साथ ही दूसरों की उन्नति एवं विकास देखकर उनके मन में ईर्ष्या, द्वेष एवं अनिष्ट की भावना पैदा होगी, जिससे दूसरे का अनिष्ट चिन्तन करते-करते वे स्वयं ही अनिष्ट के आखेट बन जाया करते हैं। जीवन में यदि उन्नति करना है, सफलता पाना है तो अपने विचारों को उन्नत एवं सृजनात्मक बनाना ही होगा, इसके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं है और यही ईश्वर के अंश मनुष्य के लिए उचित एवं योग्य है।

अनेक लोग कोई अन्य कारण न होने पर भी अपने अप्रसन्न विचारों के कारण ही दुःखी तथा व्यग्र रहा करते हैं। सामने कोई प्रतिकूलता न होने पर भी भविष्य के काल्पनिक संकटों का ही चिंतन किया करते हैं अपनी विकृत विचार धारा के कारण वे प्रसन्नता पूर्ण कारणों में भी अप्रसन्नता के कारण खोज निकालते हैं। प्रतिकूल विचारों से अपने मन का माधुर्य मस्तिष्क की शक्ति नष्ट करते रहना उचित नहीं। मानव जीवन एक दुर्लभ उपलब्धि है। इसे कुत्सित विचारों की आग में जलाने के स्थान पर उच्च वि रों, सद्भावनाओं तथा उनके अनुरूप सदाचरण द्वारा उच्च से उच्चतर स्थिति में पहुँचाना ही उचित है और यही मनुष्य का लक्ष्य है भी और होना भी चाहिये।

निराशा पूर्ण अनिष्ट विचारों में फँस जाना कोई असम्भव बात नहीं है। कोई भी किसी परिस्थिति अथवा घटना के आघात से विचारों को इस दुरभि-सन्धि में फँस सकता है। किन्तु इनसे छुटकारा पा सकना भी कोई असम्भव बात नहीं है। यदि मनुष्य वास्तव में अपने अनिष्ट विचारों से मुक्ति चाहता है तो उसे दो उपायों को लेकर आगे बढ़ना चाहिये। एक तो यह है कि वह ऊँचे तथा सृजनात्मक विचारों वाले व्यक्तियों तथा पुस्तकों के सम्पर्क में रहे, दूसरे उसे नियमित रूप से एकान्त में बैठकर अवकाश के समय अपने मन मस्तिष्क को सद् संकेत देना चाहिये। सद् विचारों के सम्पर्क में रहने से सद् विचारों को प्रोत्साहन मिलेगा और मन मस्तिष्क को सद् संकेत देते रहने से उनका कुविचार स्वयं छूटने लगेगा।

एकान्त में बैठिये और अपने मन मस्तिष्क को समझाइये कि—"तुम ईश्वरीय शक्ति के केन्द्र हो, तुम ही वह शक्ति हो जो संसार में चमत्कार पूर्ण कार्य कर दिखाया करते हो। अपने शिव संकल्पों का अवतरण करके अपने ईश्वरीय अंश को पहचानो। तुम महान हो, यह क्षुद्रता शोभा नहीं देती, इसे छोड़कर पुनः महान बनो और शरीर को महान् कार्य करने की प्रेरणा देकर महत्व को प्राप्त करो।" इस प्रकार मन मस्तिष्क को उपदेश करता हुआ, मनुष्य अपने प्रति हीन भावना का भी परित्याग करदे। वह अपने स्वरूप को पहचाने, अपनी शक्तियों में विश्वास करे और आत्मश्रद्धा के संवर्धन से व्यक्तित्व को विकसित करने का प्रयत्न करे। इस प्रकार कुछ ही दिनों में उसका विचार शोधन हो जायेगा, आचरण सुधर जायेगा और वह अपने मनोवांछित लक्ष्य को अवश्य प्राप्त कर लेगा।

विचार ही आचार के प्रेरक हैं और आचार से ही मनुष्य कोई स्थिति प्राप्त करता है, इस मूलमन्त्र को ठीक से समझकर हृदयंगम करने वाले जीवन में कभी असफल नहीं होते यह निश्चय है।

निरर्थक नहीं, सारगर्भित कल्पनायें करें

मन ही मन लम्बी-चौड़ी योजना बना लेना जितना सरल है उनको मूर्तिमान करना नहीं है। जहाँ कल्पना में शिघ्र ही बीसियों योजनायें बनकर

सरलता पूर्वक कार्यान्वित हो सकती हैं वहाँ यथार्थ में किसी योजना का एक अंश भी सफल होना मुश्किल हो जाता है। उसके लिये वह कार्य क्षमता, वह सहिष्णुता और वह दक्षता, जो किसी कार्य को करने के लिए आवश्यक होती है, कल्पना-शील व्यक्ति में नहीं होती। उसकी सारी शक्तियाँ ही काल्पनिक योजनाओं में विनष्ट होती रहती हैं।

यह बात गलत नहीं है कि संसार के किसी भी सृजन की योजना पहले विचार क्षेत्र में ही बनती है, उसकी कल्पना ही मस्तिष्क में उठती है, उसके बाद वह बाह्य-क्षेत्र में व्यक्त होती है। किन्तु मस्तिष्क के वे विचार यों ही अपने आप अभिव्यक्ति अथवा मूर्तिमान नहीं हो जाते। उनके लिये ठोस कार्य करना होता है। पसीना बहाना और संघर्ष करना होता है। अपने में इतनी सहिष्णुता तथा धैर्य उत्पन्न करना होता है जिससे कि असफलता के प्रभाव से बचा जा सके।

संसार के सारे महापुरुष जिन्होंने बड़े-बड़े काम करके दिखलाये हैं कल्पनाशील रहे हैं। यदि उनके मानस में अपनी योजना न बनती, आगामी कार्यक्रम की रूप-रेखा तैयार न होती, तो वे व्यवस्थित रूप से किस प्रकार काम कर सकते ? पहले योजना ही बनती है उसकी रूप-रेखा तैयार होती है और तब उसके अनुसार कदम-कदम चल कर लक्ष्य तक पहुँचना होता है। यदि ऐसा न किया जाये और बिना सोचे विचारे किसी ओर चल पड़ा जाये तो वह भटकन ही होगी। जिस गति का कोई लक्ष्य नहीं, कोई उद्देश्य अथवा निश्चित भाव नहीं उसकी यात्रा तो व्यर्थ ही होती है। किन्तु वे महापुरुष केवल कल्पनक अथवा मनोरथी भर ही न थे। विचार के साथ कार्य का समुचित समन्वय करना भी जानते थे। बड़े-बड़े विचार करते रहने अथवा योजनाओं के मानस चित्र बनाते रहने की जगह वे ज्यों ही कोई विचार तय कर लेते थे उसको कार्यान्वित करने के लिये जी जान से जुट पड़ते थे। एक विचार अथवा योजना का एक अंश पूरा करने के बाद ही वे दूसरा विचार मस्तिष्क में लाया करते थे।

निर्माण का आधार क्रिया ही है केवल विचार नहीं। किसी का

विचार उसे किसी मूर्ति का एक रूप देता है किन्तु उसको यथार्थ में उसके हाथ तथा औजार ही लाते हैं। यदि वह अपनी मानसिक मूर्ति को देख-देखकर ही सन्तुष्ट होता रहे और अपने को शिल्पी मानता रहे तो इससे संसार का क्या काम चल सकता है। वह अपने लिये शिल्पी अथवा कलाकार हो सकता है, संसार के लिये वह कुछ नहीं होता है। संसार तो उसका मूल्यांकन उसकी उस रचना के आधार पर करेगा, जिसका निर्माण वह यथार्थ के ठोस धरातल पर पत्थर से करेगा। कोई अपनी कल्पनाओं, इच्छाओं तथा मनोरथों में कितना महान् है इसका सम्बन्ध संसार से नहीं रहता। संसार तो उसे उस रूप में जानता है जो रूप वह अपनी रचना द्वारा उसके सामने उपस्थित करता है।

किसी का आधार विचार ही होते हैं, किन्तु मनुष्य के सारे विचार इस कोटि में नहीं आते बहुत से विचार व्यर्थ तथा निरुपयोगी होते हैं। यों तो मनुष्य के अन्तःकरण में विचारों का बहुत भण्डार भरा है। वे क्षण-क्षण पर उत्पन्न तथा विनष्ट होते रहते हैं। ऐसे क्षण-क्षण पर उठने और बिगड़ने वाले विचार सृजनात्मक नहीं होते। सृजनात्मक विचार केवल वही होते हैं जिनका मनुष्य की आत्मा से गहरा सम्बन्ध रहता है। जो किसी परिस्थिति से प्रभावित होकर बदलते नहीं और अभिव्यक्ति पाने के लिये हृदय में उथल-पुथल मचाये रहते हैं। और जब तक उन्हें सृजनात्मक मार्ग पर लगा नहीं दिया जाता चैन से नहीं बैठने देते। ऐसे प्रौढ़ तथा परिपक्व विचार बहुसंख्यक नहीं होते। मनुष्य के नित्य-प्रति उठने वाले विचारों में ही कोई एक आध विचार ही इस कोटि का होता है। जिस विचार के पीछे एक छटपटाहट, लगन तथा व्यग्रता काम कर रही हो, जिसमें प्रेरणा तथा सृजन का आन्दोलन चल रहा हो, वही विचार मनुष्य का मूल विचार होता है। अन्य सारे विचार तो मानस की साधारण तरंगें होती हैं जो हवा के रुख पर बनती बिगड़ती रहती हैं। उनका न तो कोई मूल्य महत्व ही होता है और न उन सबको मूर्तिमान ही किया जा सकता है।

मनुष्य को चाहिए कि वह विचारों की भीड़ में से अपने इस मूल

तथा स्थायी विचार को परख कर अलग करले, उसी को विकसित करे और उसी के आधार पर जीवन का लक्ष्य निर्धारित कर अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ उसे मूर्तिमान करने में लग जाये। क्षण-क्षण पर उठने वाले विचारों के माया जाल में पड़ा रहने वाला जीवन में कोई बड़ा काम नहीं कर सकता। कोई मनुष्य किसी का आध्यात्मिक प्रवचन सुनकर प्रभावित हो जाता है और मोक्ष प्राप्ति की ओर विचार करने लगता है। कभी किसी राजनीतिज्ञ की उक्तियाँ सुनकर प्रभावित होता और राजनीति में पड़ने का विचार करने लगता है। कभी किसी का कारोबार देखकर व्यापारी बनने की सोचता है, तो किसी रचना को देखकर चित्रकार, साहित्यकार अथवा शिल्पी बनने की इच्छा करने लगता है। इस प्रकार के अनुभव आने वाले विचारों को विचारों की कोटि में नहीं रक्खा जा सकता यह केवल बाह्य प्रभाव अथवा विकार ही होते हैं, इनमें कोई मौलिकता नहीं होती। मौलिक विचार वही होता है जो अपनी आत्मा की प्रेरणा से प्रबुद्ध होता है और मूर्तिमान होने के लिये मस्तिष्क में आन्दोलन संचार करता है।

अनेक बार लोगों में मौलिक विचार नहीं भी होते। किन्तु उन्हें जीवन में कुछ कर जाने की इच्छा जरूर होती है। ऐसी दशा में वह यह नहीं समझ पाता कि वह क्या करे अथवा उसे क्या करना चाहिये? ऐसी दशा में विचार उधार भी लिये जा सकते हैं अथवा यों कह लिया जाये कि दूसरों से ग्रहण किये जा सकते हैं। दूसरों से विचार-ग्रहण करने में एक सावधानी यह रखनी होगी कि कोई ऐसा विचार-ग्रहण न किया जाये जो अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुरूप न हो। मान लीजिए किसी की प्रवृत्ति तो व्यावसायिक है और वह किसी की सफलता अथवा उन्नति देखकर विचार-ग्रहण कर लेता है राजनैतिक जीवन में नेता बनने की सोचने लगता है, तो वह अपने उद्देश्य में सफल न हो सकेगा। उसकी प्रवृत्तियाँ क्षण-क्षण पर उसका विरोध करती रहेंगी। उसकी क्रियायें अपनी पूर्ण-क्षमता के साथ आगे नहीं बढ़ सकेंगी। कोई कार्य सफल तभी होता है जब उसके साथ तन-मन तथा मूल प्रवृत्तियों का भी सहयोग हो। केवल क्रिया ही कोई सफलता ला सकती है यह सम्भव नहीं।

किसी को अपना जीवन लक्ष्य बनाने के लिये किसी से कौन-सा विचार ग्रहण करना चाहिये इसकी परख के लिये आवश्यक है कि वह विचार सुने और उनमें से अच्छे-अच्छे जो सबसे अधिक आकर्षक लगें अपने पास इकट्ठे कर ले और बाद में उनको अपनी बुद्धि तथा प्रवृत्तियों की तुलना पर बार-बार तोलता रहे। जिस विचार के साथ उसकी प्रवृत्तियों का सबसे अधिक सामंजस्य बैठे उसी को स्थायी रूप से ग्रहण कर लेना चाहिए। किन विचारों से किसका सामंजस्य सबसे अधिक होता है यह समझ सकना कोई मुश्किल नहीं, मनुष्य की प्रवृत्तियाँ अपने सामंजस्य अथवा असामंजस्य को बड़ी जल्दी प्रकट कर देती हैं। इस परख के लिये एक उपाय यह भी है कि जिस ग्रहण किये विचार के सार के साथ उसकी स्वयं की विचार-धारा मिलकर बह चले विचार वही उसके लिये ग्राह्य है। अर्थात् जिस गृहीत विचार को हमारा अन्तःकरण सरलता पूर्वक विकसित एवं पल्लवित कर सकता है उसमें शाखायें प्रशाखायें उत्पन्न कर सकता है, उसे अपने चिन्तन के बल पर रूपान्तर कर सकता है, वही सर्वथा ग्राह्य है।

लक्ष्य बनाने के लिये किसी से विचार ग्रहण करते समय एक यह बात भी विचारणीय है कि जिस विचार को हम ग्रहण कर रहे हैं, साथ ही हमारी मूल प्रवृत्तियों से जिसका सामंजस्य भी है, क्या उसके अनुसार हमारी क्षमता अथवा परिस्थितियाँ भी हैं अथवा नहीं। मानिए हम एक विचार ऐसा ग्रहण कर लेते हैं जिसका सम्बन्ध एक विशाल आध्यात्मिक साधना से है और उसको सफल करने के लिये बहुत बड़े संयम अथवा त्याग की आवश्यकता है, हमारी प्रवृत्ति भी उसके अनुकूल है। किन्तु परिस्थिति इस योग्य नहीं है कि सब कुछ त्याग कर साधना में लग जाया जाये। घर गृहस्थी, कारबार और छोटे-छोटे बच्चों का उत्तरदायित्व का भार सिर पर है जिसका त्याग करने से बहुत बड़ा अनिष्ट हो सकता है। परिवार तथा बच्चों का भविष्य अन्धकार में हो सकता है, तो वह विचार ग्राह्य होते हुये भी अग्रहणीय है। उसको क्रियान्वित करने के लिये समय की प्रतीक्षा करनी होगी और तब तक करनी होगी जब तक परिस्थिति उसके अनुकूल न हो जाये। विचार-ग्रहण करके उसे

अपनी आत्मा में संजो लेना होगा और धीरे-धीरे अन्दर मन में चिन्तन करते हुये उसे दृढ़ से दृढ़तर बनाते रहना होगा। साधना पथ पर धीरे-धीरे परिस्थिति से सामंजस्य करते हुये चलना होगा। सहसा कोई बड़ा कदम उठा लेना उचित न होगा। ऐसा करने से हित के स्थान पर अहित होने की सम्भावना रहती है।

तो इस प्रकार विचारों की भीड़ से अपने मूल-विचार को छांट लेना चाहिये और यदि मूल-विचार न हो तो अनुकूल विचार कहीं से ग्रहण करके अपना जीवन लक्ष्य तथा पथ निर्धारित कर उस पर योजना बद्ध गति से चलना चाहिये। विचार को केवल विचार-मात्र बनाए रखने से कोई प्रयोजन सिद्ध न होगा। सिद्धि के लिये विचारों तथा क्रियाओं का समुचित समन्वय भी करना होगा। जो केवल विचार ही विचार करता रहता है और उनको मूर्तिमान करने के लिये क्रियाशील नहीं होता उसके विचार मस्तिष्कीय विकार बनकर उसे निष्क्रिय एवं निरर्थक बना देते हैं। विचार सृजन की आधार-शिला अवश्य हैं किन्तु तब ही जब वे मौलिक, दृढ़ तथा कार्यान्वित हों। अन्यथा वे केवल कल्पना बनकर अपने विचारों पर उसे लिये उड़ते फिरेंगे और कहीं का न रखेंगे। जो निष्क्रिय विचारों के जाल में फंस जाया करता है उसका जीवन बहुधा असफल ही रहा करता है। फिर भले ही उसके विचार कितने ही महान्, सुन्दर और कल्याण पूर्ण ही क्यों न हों और क्यों न वह उनके विभ्रम में अपने को महान्, महापुरुष अथवा आदर्श व्यक्ति समझता रहे। वास्तव में वह एक कल्पनक के सिवाय और कुछ नहीं एक साधारण कर्मठ व्यक्ति भी नहीं।

चिन्ता भी मस्तिष्क की उपज है—किन्तु सत्यानाश के लिये

चिंतित अथवा निराश होने से संसार की कोई भी आपत्ति आज तक दूर नहीं हुई है। आपत्ति को दूर करने का उपाय है उत्साह पूर्ण पुरुषार्थ। परिस्थितियों को आत्म-समर्पण कर देने से उनकी प्रतिकूलता यहाँ तक बढ़ जाती है कि फिर वे विनाश का ही कारण बन जाती हैं। यदि विनाश से बचना है अपने जीवन को सार्थक करना है तो चिन्ता छोड़कर पुरुषार्थ के लिये कमर कसिये।

चिन्ता ग्रस्त मनुष्य की सारी शक्तियाँ जर्जर हो जाती हैं और वह किसी पुरुषार्थ के योग्य नहीं रहता। निराशा के काले बादल उसके जीवन क्षितिज पर उमड़ते-घुमड़ते और भयानक रूप से अन्तर्जगत में हाहाकार मचाये रहते हैं। आदमी उस आन्तरिक आघात से घबराकर किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाता है। उसकी कर्म शीलता नष्ट हो जाती है जिसके परिणाम स्वरूप एक दिन वह स्वयं भी नष्ट हो जाता है। चिन्ता की ज्वाला दावाग्नि की तरह जीवन के हरे-भरे वृक्ष को जलाकर कुछ ही समय में नष्ट कर देती है।

आपत्ति अथवा संकट संसार में सभी पर आता है। यदि इस प्रकार संकट से हारकर मनुष्य अकर्मण्य होकर बैठ-बैठ रहें तो इस चहल-पहल और हलचल से भरे संसार में निकम्मे व्यक्तियों की बहुतायत हो जाये। किन्तु ऐसा सम्भव कभी भी नहीं हो सकता। एक दो, चार, छः अथवा सौ, दो सौ कम-जोर दिल के आदमियों को छोड़कर लोग संकटों से लड़ते और परिस्थितियों को बदलते हुए आगे बढ़ते ही रहेंगे। संसार में निकम्मों अथवा अकर्मण्यों की बहुतायत कभी न हो सकेगी। मनुष्य ने जब अपने पुरुषार्थ, परिश्रम तथा सूझ-बूझ के बल पर आदिम परिस्थितियों को अपने अनुकूल बना लिया था तब आज तो उसके पास अनन्त उपकरण तथा प्रचुर साधन हैं। किन्तु इनका उपयोग वही व्यक्ति कर सकता है जो परिस्थितियों की प्रतिकूलताओं को देखकर निराश, हतोत्साह अथवा चिन्तित नहीं होता, प्रत्युत उनसे लड़ने के लिये अपनी संपूर्ण शक्ति से आगे बढ़ता है। परिस्थितियों को देखकर चिन्तित हो उठने और उनके सम्मुख घुटने टेक देने वाले हीन-हिम्मत व्यक्ति को प्रतिकूलतायें जीवित नहीं रहने देतीं।

चिन्ता का मूल कारण मनुष्य की अकर्मण्यता ही है। अपने को निठल्ला रखने से मस्तिष्क खाली रहता है। मस्तिष्क में उस अवकाश को चिन्ता के कीटाणु घेर लिया करते हैं। यह फिर स्वाभाविक है। जब मनुष्य कुछ काम ही नहीं करेगा तो उसे जीवन में बढ़ सकने की आशा ही नहीं रहेगी। उसे अपना भविष्य भयावह दिखाई देने लगेगा। जिसका परिणाम चिन्ता के सिवाय और कुछ हो ही नहीं सकता। दूसरे चिन्ता की आग में जलते रहने

से मन, मस्तिष्क तथा शरीर शिथिल होता रहेगा जिससे मनुष्य चिन्ता, प्रति-चिन्ता का शिकार बन जायेगा। उसके जीवन में चिन्ताओं का ऐसा तारतम्य बन जायेगा कि फिर उसे उनमें से निकलने का कोई मार्ग ही न दीखेगा।

यदि जीवन में काम की महत्ता समझी जाये और एक क्षण भी अपने को बेकार न रक्खा जाये तो चिन्ता करने का अवकाश ही न मिले। काम, काम को जन्म देता है। इस प्रकार सक्रिय रहने से चिन्ता के बजाय जीवन में कर्मशीलता की परम्परा प्रारम्भ हो जाये। निरन्तर श्रम एवं पुरुषार्थ करते रहने से मनुष्य का मन मस्तिष्क तथा शरीर सतेज एवं स्वस्थ बना रहता है। उसमें स्फूर्ति तथा उत्साह का गुण आ जाता है। तेजस्वी मन मस्तिष्क चिन्ता से ग्रस्त होना तो दूर चिन्ता के कारणों को काटकर फेंक देता है। वह एक क्षण भी निराशा अथवा निरुत्साह बर्दाश्त नहीं कर सकता। मन-मस्तिष्क स्वस्थ रहने पर चिन्ता चेतना में बदलकर सक्रिय बना देती है।

जो चिन्ता में घुल-घुल कर अपने को अशक्त बना लेता है वह एक छोटा सा कारण उपस्थित होने पर ही घबरा उठता है। उसके हाथ पाँव फूल जाते हैं। उसका आत्म-विश्वास तथा बुद्धि जवाब दे देती है। वह ऐसी दला-दली तथा भय का शिकार बन जाता है जो उसे हर हालत में गलत रास्ते पर ही ठेल देता है। चिन्ता ग्रस्त मस्तिष्क न परिस्थितियों का विश्लेषण कर पाता है और न उनके निवारण की युक्ति ही सोच पाता है। उसके पास प्रतिकूलताओं के मुकाबले घबराने और रोने-धोने के सिवाय कुछ भी शेष नहीं रहता। जिसने चिन्ता से अपने तन मन को जर्जर बना डाला है अपनी विवेक बुद्धि को कुण्ठित अथवा खोटी कर लिया वह आपत्तियों का सामना कर भी किस बल पर सकता है।

चिन्ता-जर्जर व्यक्ति प्रतिकूलताओं का सामना करने के बजाय किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाता है। वह कोई उपाय अथवा उपचार करने के बजाय चिन्ता में पड़ जाता है। उसका निर्बल मस्तिष्क अकल्याण पूर्ण ऊहापोह में व्यस्त हो जाता है। और फिर उसके चिन्ता के कारण इतने प्रबल हो जाते हैं कि उनका निवारण एक पहेली बन जाता है। किसी विषय को चिन्ता का रूप

देने के बजाय कर्म का फल देना ही अधिक बुद्धिमानी है। एक बार जब मनुष्य चिन्ता के कारण दूर करने के लिए छोटा सा भी उपाय करने लगता है तो बड़े-बड़े उपाय तो आप से आप उसे सूझने लगते हैं।

दीर्घ सूत्री व्यक्ति बहुधा चिन्ता के ही रोगी बने रहते हैं। 'अभी' का काम 'कभी' पर टालने वालों का मस्तिष्क कभी भी चिन्ता मुक्त नहीं रह सकता। उनका उपेक्षित कर्तव्य उनके मन मस्तिष्क पर निरन्तर बोझ बना रहेगा वे कितना ही भूलने अथवा मस्त रहने का प्रयत्न क्यों न करते रहें किन्तु कर्तव्य की पुकार उन्हें कदापि चैन न लेने देगी वह उनके मस्तिष्क में निरन्तर गूँजती हुई उन्हें चिन्तित किये रहेगी। उनकी चेतना यद्यपि प्रेरित करती रहेगी किन्तु कोई फल न देखकर अन्त में स्वयं भी निराश होकर चिन्ता करने लगेगी। दीर्घ-सूत्रता चिन्ता का एक विशेष कारण है। बुद्धिमान व्यक्ति इस दुर्बलता से सदैव सावधान रहते हैं और आज का काम कल पर कभी नहीं टेलते।

चिन्तित व्यक्ति का जीवन दुःख और निराशा से भरकर उदास हो जाता है। उसकी सारी उत्साह-पूर्ण प्रवृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। चिन्तित व्यक्ति अपना म्लान मन और म्लान मुख लेकर जिसके समीप भी जाता है वह उसे घृणा किया करता है। छूत की बीमारी की तरह उसके सम्पर्क से दूर भागने का प्रयत्न करता है। संसार का कोई व्यक्ति किसी विषादी अथवा चिन्तित व्यक्ति को अपने पास पसन्द नहीं करता। क्योंकि वह जानता है कि वह जितनी देर बैठेगा निराशा पूर्ण वार्तालाप करेगा। अपने दुःख का ही रोना रोता रहेगा और चाहेगा कि लोग उसकी निरर्थक निराशा अथवा चिन्ता में हिस्सा बटायें। उसकी तरह निराश बनकर उदास दिखाई देने लगें। लोगों के पास इतनी निरर्थक उदारता कहाँ कि वे किसी चिन्ता के रोगी व्यक्ति का दुखड़ा सुनें उसके प्रति संवेदना दिखाने के लिये अपने हर्ष उल्लास तथा प्रसन्नता को बलिदान कर दें। चाहे जिस की जिन्दगी को वे हँसते मुस्कराते हुए काटें अथवा विषाद की आग में जलते हुये। संसार में हँसी और मुस्कान का साथ देने को सब तैयार रहते हैं। विषाद में हाथ बंटाने की फुरसत नहीं पर

दिखती है। और यदि कोई चिंतित, निराश अथवा विषादी से सहानुभूति दिखलाता है तो वह अधिकतर दिखावटी ही होती है। साथ ही उसमें दया, तरस अथवा खेद की ही भावना रहती है। इस प्रकार की दयनीयता का पात्र बनना निश्चय ही किसी भी मनुष्य के लिये लज्जा की बात है। अतः कारण होने पर भी चिंतित, निराश अथवा उदास बनकर किसी के तरस के पात्र मत बनिये। प्रबल पुरुषार्थ करिये, धैर्य एवं बुद्धि से काम लीजिये और इस प्रकार से चिंता के कारणों का उन्मूलन कर डालिए।

चिंतित व्यक्ति जहाँ भी जाता है, संक्रामक रोग की तरह आस-पास का वातावरण उदास कर देता है। उसे देखकर हँसते हुए लोग भी चुप हो जाते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि उनकी हँसी से इस विषाद-ग्रस्त व्यक्ति के रोगी मन को कष्ट होगा। चिंतित व्यक्ति बहुधा ईर्ष्यालु भी होता है। वह किसी के मुख पर मुस्कान की कांति देखकर डाह से जला करता है। उसे दूसरों का हर्ष अपनी निराशा पर एक व्यंग जैसा ही अनुभव हुआ करता है। उसकी यही इच्छा रहती है कि संसार का कोई भी व्यक्ति न तो हँसे और न प्रसन्न ही हो। सब उसी की तरह निराश एवं चिंतित बने रहें। प्रसन्नता पूर्ण वातावरण में विषादी व्यक्ति अपने को अनजान महसूस किया करता है। उसे दूसरों की प्रसन्नता पर रोना आता है, हर्ष पर खीझ होती है। निःसन्देह यह कितनी दुर्भाग्य पूर्ण स्थिति है। विषादी अथवा चिंतित व्यक्ति स्वयं तो हँसता ही नहीं साथ ही यह चाहता है कि संसार का कोई भी व्यक्ति न तो हँसे और न प्रसन्न ही हो। सब उसी की तरह मन मारे होकर जिन्दगी बितायें। कितनी अन्याय पूर्ण कामना और अनधिकार भावना है।

चिंतित रहना बड़ा ही दुर्भाग्य पूर्ण स्वभाव है। इससे जितनी जल्दी छुटकारा पाया जा सके उतना ही हितकर है। चिंता के कारणों का उपस्थित हो जाना असम्भाव्य है। वे आते हैं और सबके सामने आते हैं। किन्तु केवल निराश हो जाने अथवा चिंता करने मात्र से ही तो वे दूर नहीं हो जायेंगे। उसके लिये तो उपाय एवं उपचार ही करना होगा। जो व्यक्ति अपने मन मस्तिष्क को चिंता के हवाले कर देता वह उनका उपचार कर भी किस

पुकार सकता है। चिन्ता के कारणों को दूर करने के लिये तो अपने मन मस्तिष्क को मुक्त करके प्रयत्न में लगना होगा। बिना प्रयत्न, बैठे-बैठे चिन्ता करते रहने से आज तक किसी की कोई समस्या न तो हल ही हुई है और न आगे ही होगी।

चिन्ता दूर करनी है तो शान्त मन मस्तिष्क से उसके कारणों पर विचार कीजिये और कोई उचित युक्ति खोज निकालिये। सोची हुई युक्ति के अनुसार कार्य में लग जाइये और तब तक लगे रहिये जब तक आप अपने मन्तव्य में सफल न हो जायें।

निरन्तर कार्य व्यस्त रहने से चिन्ता करने का अवकाश ही न मिलेगा। चिन्ता खाली मस्तिष्क का विकार है। यदि आपका स्वभाव चिन्ताशील बन गया है तो उसका तुरन्त उपचार कीजिए। अभी तक आप अपने जैसे ही चिन्तित एवं निराश व्यक्तियों का सम्पर्क पसन्द करते रहे होंगे और शायद उन्हीं के पास दौड़-दौड़ कर जाते होंगे। किन्तु अब आप संघर्षशील एवं प्रसन्नचेता व्यक्तियों के सम्पर्क में आइये। यदि आपके पास स्वयं अपनी हँसी न हो तो दूसरों की हँसी में शामिल होइये और जी खोलकर हँसिये। स्वयं अपने तथा उदास चिन्तित रहने वाले व्यक्तियों का उपहास करिये। उनसे मनोरंजक वार्तालाप करिये। अभी तक आप को संगीत वाद्य अथवा मनोरंजन से कोई रुचि नहीं थी। अब उसको अपने जीवन में स्थान दीजिए और हर्ष पूर्वक रुचि लीजिये। सुन्दर-सुन्दर पुस्तकें पढ़िये। एकान्त से निकलकर पुस्तकालयों, वाचनालयों तथा अन्य सार्वजनिक गोष्ठियों में जाइये और अपना अन्तर्मुखी स्वभाव छोड़कर बहिर्मुखी बनिये। बच्चों के साथ खेलिये और उनको हँसाते हुए स्वयं भी हँसिये। अपने जीवन की मन्थरता दूर करके शीघ्रता लाइये। प्रकृति के सम्पर्क में आइये और जी भरकर दिन भर परिश्रम कीजिए और रात में गहरी नींद सोइये। चिन्ता का रोग आप से दूर हो जायेगा और आप एक प्रसन्नचेता व्यक्ति बन जायेंगे।

निराशा को छोड़कर उठिये और आगे बढ़िये

अनेक लोग एक छोटी-सी अप्रिय घटना-साधारण-सी असफलता और

नगण्य सी हानि से व्यग्र हो उठते हैं, और यहाँ तक व्याकुल हो उठते हैं कि जीवन का अन्त ही कर देने की सोचने लगते हैं, और यदि ऐसा नहीं भी करते तो भविष्य की सारी आकांक्षाओं को छोड़कर एक हारे हुये सिपाही की भाँति हथियार डालकर अपने से ही विरक्त होकर निकम्मी जिन्दगी अपना लेते हैं। यह भी आत्म-हत्या का ही एक रूप है।

इस प्रकार की आत्म-हिंसा के मूल में अप्रिय घटना, असफलता अथवा हानि का हाथ नहीं होता, बल्कि इसका कारण होती है—मनुष्य की अपनी मानसिक दुर्बलता। हानियाँ अथवा अप्रियतायें तो आकर चली जाती हैं। वे जीवन में ठहराती तो हैं नहीं। किन्तु दुर्बल मना व्यक्ति उनकी छाया पकड़कर बैठ जाता है और अपनी चिन्ता का सहारा उन्हें वर्तमान किये रहता है। घटनाओं की कटुताओं एवं अप्रियताओं की कल्पना कर करके और हठात् उनकी अनुभूति जगाकर अपने को सताया करता है। धीरे-धीरे वह अपनी इस काल्पनिक कटुता का इतना अभ्यस्त हो जाता है कि वह उसके स्वभाव की एक अङ्ग बन जाती है और मनुष्य एक स्थायी निराशा का शिकार बनकर रह जाता है। इस सब अस्वाभाविक दुर्दशा का कारण केवल उसकी मानसिक दुर्बलता ही होती है।

जहाँ अनेक व्यक्ति अप्रियता अथवा प्रतिकूलता से इस प्रकार की सोचनीय अवस्था में पहुँच कर जिन्दगी चौपट कर लेते हैं, वहाँ अनेक लोग अप्रियताओं एवम् प्रतिकूलताओं से अधिक सक्रिय, साहसी एवं उद्योगी हो उठते हैं। वे पीछे हटने के बजाय आगे बढ़ते हैं। हथियार डालने के स्थान पर उन्हें आगामी संघर्ष के लिये संजोते सँभालते हैं। वे संसार को आँख खोलकर देखते हैं और अपने से कहते हैं—"इस दुनियाँ में ऐसा कौन है जो जीवन में सदा सफल ही होता रहा है, जिसके सम्मुख कभी अप्रियतायें अथवा प्रतिकूलतायें आई ही न हों। किन्तु कितने लोग निराश, हताश, निरुत्साह अथवा हेय-हिम्मत होकर बैठे रहते हैं। यदि ऐसा रहा होता तो इस संसार में न तो कोई उद्योग करता दिखाई देता और न हँसता बोलता। सारा जन-समुदाय निराशा के अन्धकार से भरा केवल उदास और आँसू बहाता ही दिखाई देता।" वे

खोज-खोजकर कर्मवीरों के उदाहरण अपने सामने रखते हैं ऐसे लोगों पर अपनी दृष्टि डालते हैं जो जीवन में अनेक बार गिरकर उठे होते हैं। वे असफलता की कटु कल्पनायें नहीं भविष्य की सफलताओं की आराधना किया करते हैं। उनके इस मनोहर दृष्टिकोण का कारण उनका मानसिक बल तथा आत्म-विश्वास ही होता है।

कोई भी मनस्वी व्यक्ति कभी निराश नहीं होता। क्योंकि वह जानता है कि निराशा एक गहन अन्धकार है, जो मनुष्य को इस हद तक अन्धा बना देता है कि आगे का मार्ग, भविष्य की सम्भावनायें, तो दूर उसे अपने हाथ-पैर तक नहीं दिखाई देते। निराशा एक डरावनी मनःस्थिति है। चिन्ता को जन्म देने वाली पिशाचिनी है। शङ्का, आशङ्का और विवशता के बन्धन निराशा से ही उत्पन्न होते हैं। निराशा को आगे रखने से मनुष्य के हृदय में निवास करने वाली महान शक्तियाँ सामने नहीं आ पातीं। निराशा अपने सहायकों और यहाँ तक सारे संसार के प्रति अविश्वास पैदा कर देती है। निराशा का साथ मनुष्य को सब ओर से अनाथ करके हेय और हीन वृत्ति बना देता है इस प्रकार की विवेक बुद्धि रखने वाले मनस्वी लोग निराशा को पाप की तरह घृणित तथा अग्राह्य समझकर पास नहीं फटकने देते।

वे सर्वत्र आशा की आराधना किया करते हैं। उद्योगों का सहारा लिया करते हैं। उन्हें पता रहता है कि आशा की आलोकमयी शीतल किरणों में संजीवनी शक्ति रहा करती है। आशा का आलोक मानसिक अन्धकार को दूर करके, व्याकुल एवं अशांत चित्त को संयत करके सम्भावनायें प्रदान किया करता है। आशा की एक नन्ही-सी किरण निराशा के घोरतम अँधेरे को नष्ट करके मनुष्य के हारते मन में हिम्मत, आत्म-विश्वास तथा नया उत्साह उत्पन्न किया करती है। वह मनुष्य को आगे बढ़ने, संघर्ष करने तथा अपना हारा दाँव जीत लेने की प्रेरणा दिया करती है। आशा ईश्वरीय कुमुक की अग्रदूती और निराशा मृत्यु की संदेश वाहिका हुआ करती है। इस शाश्वत सत्य के आधार पर कोई बुद्धिमान, विवेकशील तथा मनस्वी व्यक्ति आशा का साथ छोड़कर कभी निराश नहीं होता।

असफलता अथवा अप्रियता से प्रभावित होकर आत्म-हिंसा करने वाले निःसन्देह संसार के सबसे बड़े मूर्ख हुआ करते हैं। इस अनैतिक कार्य के पीछे उनकी आत्म-ग्लानि, आत्म-भर्त्सना, मानसिक उलझना तथा अन्तर्द्वन्द्वों का ही हाथ रहता है, जिनको जन्म देने वाली उनकी कुकल्पनाएँ तथा निरर्थक चिन्ताएँ ही होती हैं। यह सारे विकार अस्वस्थ मन के ही विकार हुआ करते हैं। सबल मन वाले लोग परिस्थितियों की छाती पर पैर रोपकर उन्हें अपने अनुकूल बनाने के लिए विवश कर लिया करते हैं। वे कभी कल्पित भय तथा अनागत असम्भावनाओं के प्रति पहले से ही आत्म-समर्पण करने की कायरता नहीं करते। उनका विश्वास परिस्थितियों से लोहा लेते हुए जीतने में होता है। यों ही बिना दो हाथ किये हारने अथवा आत्म-हिंसा करने में नहीं होता।

संसार में ऐसे असंख्यों उदाहरण भरे पड़े हैं कि लोग एक बार क्या सौ बार असफल होकर, हजार बार गिरकर उठे और आगे बढ़े हैं और अन्ततः उन्होंने अपना लक्ष्य पाया है, अपना स्थान बनाया है। इसके विपरीत एक भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलेगा कि वह व्यक्ति जो एक बार असफल होकर, निराश होकर, बैठ रहा हो और फिर वह कभी भी जीवन में उठ पाया हो अथवा आगे बढ़ पाया हो। ध्येय मार्ग में असफलता आने पर निराश होकर बैठ रहने वाले व्यक्ति वास्तव में ध्येय के धनी नहीं होते। वे केवल सफलताओं के ही ग्राहक होते हैं। लगनशील व्यक्ति अपने मार्ग में असफलता का अवरोध देखकर और अधिक हिम्मत तथा उत्साह से आगे बढ़ता है क्योंकि उसे अपने लक्ष्य, अपने ध्येय से सच्चा प्रेम होता है। मार्ग की असफलता उसके हृदय में अपने लक्ष्य के प्रति और भी अधिक प्रियता, उत्सुकता तथा आकर्षण बढ़ा देती है। कठिनाइयों एवं कठोरताओं के मार्ग पर चलकर पाया हुआ लक्ष्य ही वास्तविक श्रेय एवं आत्म-सन्तोष दिया करता है।

परीक्षा में फेल होकर, व्यापार में हानि होने अथवा उद्योग में असफल हो जाने से बहुधा लोग निराश होकर बैठ जाते हैं और व्यर्थ के ऊहापोह में फँसकर जीवन के प्रति विश्वास खो देते हैं। वे सोचने लगते हैं कि अब वे

जिन्दगी में कभी तरक्की नहीं कर सकते। समाज से उनका मान उठ जायेगा। हर ओर उन्हें लांछना एवं तिरस्कार का लक्ष्य बनना पड़ेगा। लोग उन्हें नीची नजर से देखेंगे, उन पर हँसेंगे, व्यङ्ग करेंगे। इस प्रकार अवहेलना एवं अवमानना के ताप से जलती हुई उनकी जिन्दगी दूभर हो जायेगी। इससे अच्छा है कि वे किसी एकान्त कोने में अपना मुँह छिपाकर पड़े रहें अथवा इस भार पूर्ण जीवन का अन्त कर डालें।

वास्तव में यह कितनी मूर्खता पूर्ण विचार पद्धति है। वे ऐसे विद्यार्थियों एवम् व्यक्तियों की ओर दृष्टि क्यों नहीं डालते कि जो एक वर्ष परीक्षा में फेल होकर अधिक उत्साह से अध्ययन में लगे और अगले वर्ष अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण होकर समाज में प्रशंसा के पात्र बने। ऐसे व्यवसायियों एवं व्यापारियों को अपना आदर्श क्यों नहीं बनाते जो बड़े-बड़े घाटे उठाकर बाजार में लगे रहे, उत्साहपूर्वक श्रम करते रहे और अन्त में उन्होंने अपनी स्थिति पहले से भी अधिक उन्नत एवं स्थिर बनाली है। बुद्धिमान व्यक्ति असफलताओं का वरण किया करता है। यदि असफलताओं, कठिनाइयों तथा हानियों से इस प्रकार हिम्मत हारकर निराश ही बाया जाये तो संसार की सारी सक्रियता ही नष्ट हो जाये। किन्तु ऐसा होता कभी नहीं। हजारों लाखों लोग नित्य असफल होकर सफलताओं के लिये संघर्ष करते और बढ़ते रहेंगे। कोई इक्के-दुक्के ही मानस रोगी और पुरुषार्थ हीन व्यक्ति असफलताओं से हारकर मैदान छोड़ते और कायरता का कलङ्क लेते रहेंगे।

कोई भी मनुष्य संसार में कुछ भी लेकर पैदा नहीं होता है। जन्म के समय उसकी बन्द मुट्ठियों में कुछ भी नहीं होता। वह केवल अपने शिशु हृदय में एक अनजान आशा और अपरिचित आत्म-विश्वास को लिये हुए ही पैदा होता है। जन्म के बाद वह धीरे-धीरे संकटों का सामना करता हुआ बढ़ता है। बड़ा होकर पढ़ता लिखता और संसार समर में उतरता है। जन्म के समय कुछ भी न लाया हुआ मनुष्य अपने उद्योग एवं आशा के बल पर बड़ी से बड़ी विभूतियाँ प्राप्त कर लेता है और अन्त में उन्हें यहीं छोड़कर चला जाता है। वह न कुछ लाता है और न ले जाता है। उसका अपना सच्चा

बल पुरुषार्थ, उद्योग एवं उद्यम ही होता है जिसका प्रवर्तन कर वह श्रेय अथवा निकम्मा होकर जीवन की शक्तियों पर कलङ्क लेकर चला जाता है।

असफलताओं तथा हानियों से निराश होकर निकम्मे हो जाने वालों को सोचना चाहिये कि जब वे संसारमें आये थे तब उनके पास कुछ भी नहीं था। उन्होंने अपने हाथ पैरों के बल पर सब कुछ पा लिया। और यदि आज वह संयोग अथवा पट परिवर्तन से उनके पास से चला गया तो इसमें निराश होने की क्या आवश्यकता। जब उनके पास कुछ नहीं था तब उन्होंने सब कुछ पा लिया और आज जब उनके पास बहुत कुछ शेष है तब वे अपने परखे हुए उद्योग के बल पर फिर सब कुछ न पा लेंगे ऐसी कोई सम्भावना नहीं है। बस इसके लिए आशा की ज्योति जगाने तथा अपने में विश्वास करने मात्र की आवश्यकता है। उठिये और आत्म-विश्वास के साथ अपने उद्योग में लगिये आप अवश्य सफल एवम् सौभाग्यशाली बनेंगे।

यदि कोई सङ्कट आप पर आ गया है, आपको उससे छुटकारा पाना है, वह आपसे आप तो चला नहीं जायेगा। उसे दूर करने के लिये तो उद्योग करना ही होगा। यदि आप निरुद्योगी होकर बैठ रहते हैं तो इसका अर्थ यह होगा कि आप अपने सङ्कट को दूर ही नहीं करना चाहते। आप उद्योग की कठिनाई की अपेक्षा संकट का त्रास अधिक पसन्द करते हैं। आप जान-बूझकर अमूल्य मानव जीवन को नष्ट कर देना चाहते हैं। जो असफलता आ चुकी है, जो हानि हो चुकी है, जो हाथ से चला गया है उसके लिए रोने-कलपने अथवा हाय-हाय करने से भूतकाल वर्तमान में आकर आपको सान्त्वना नहीं दे सकता। इसके लिए तो आपको भविष्य की सम्भावनाओं की ओर ही देखना होगा। उसके लिए आत्म-विश्वास के साथ पुरुषार्थ करना होगा।

यदि आप अपनी असफलता अथवा हानि से व्यग्र हैं तो अब बहुत हो चुका। उठिये अपने मन को कड़ा करिये। आत्म-विश्वास को जगाइये। अन्तर में आलोक करने वाली आशा का दीपक जलाइये। चिन्ता छोड़िये और अपने तन-मन-धन से उद्योग एवं उपाय में लग जाइये। निराशा को जीतकर आशा

की ओर आने वाला कभी निराश न होने वाले से अधिक शक्तिवान होता है। चट्टानों को पार करके बहने वाले स्रोत की गति संसार में कोई नहीं रोक सका है। उठिये और अवरोधित धारा की तरह वेग से आगे बढ़िये आपमें शक्ति की विद्युत आयेगी और आप कल्पनातीत स्तर पर सफल होंगे, श्रेय पायेंगे।

आशा का सम्बल छोड़िए मत

मानव-जीवन की गति ही कुछ इस प्रकार निर्धारित हुई कि उसमें उलझनें, समस्याएँ और असामंजस्य आने स्वाभाविक हैं। मनुष्य एक अकेला रहने वाला प्राणी तो है नहीं। वह एक बड़ा सामाजिक प्राणी है, और एक बड़े समाज के साथ मिलकर चल रहा है। उसके जीवन के कुछ नियम हैं, मर्यादाएँ हैं, विधियाँ हैं। उन सबका निर्वाह करते हुए चलना पड़ता है। इस जीवन-विधान के कारण उसके सम्मुख कभी भौतिक तो कभी आध्यात्मिक समस्याएँ आती ही रहती हैं। इन स्वाभाविक समस्याओं से घबरा कर निराश अथवा चिन्तित हो जाना उचित नहीं। मनुष्य को साहसपूर्वक समस्याओं का हल निकालते चलना चाहिए। किन्तु यह सम्भव तभी होगा जब वह अपने पर निराशा अथवा चिन्ता को हावी न होने दे। यदि वह चिन्ताओं और निराशाओं को अपने ऊपर हावी हो जाने देता है तो उसकी बुद्धि, उसकी शक्ति, साहस और उत्साह नष्ट हो जाएगा। वह मानसिक रूप से शून्य और भौतिक रूप से नकारात्मक हो जाएगा। ऐसी दशा में किसी समस्या पर विचार कर सकना उसके लिए सम्भव न होगा। निराशा का कुप्रभाव बतलाते हुए एक विचारक ने लिखा है—

"चिन्ता और निराशा से जर्जरित अन्तःकरण वाला मनुष्य किसी पुरुषार्थ के योग्य नहीं रहता। जिस वृक्ष के कोटर में अग्नि जल रही हो उसमें पल्लवों की सुखद, शीतल छाया सम्भव नहीं। शोक सन्ताप के रहने पर अनेक उपद्रवों की सम्भावना बनी ही रहती है, क्योंकि वे मानसिक अनर्थ

की जड़ होती है। इनसे बुद्धि और विवेक का पराभव हो जाता है और कर्तव्य-अकर्तव्य का निर्णय कठिन हो जाता है। दावाग्नि से जितना ताप पहुँचता है, उससे कहीं अधिक ताप निराशा तथा चिन्ता से पहुँचता है। चिन्ताग्रस्त मनुष्य की शान्ति, निद्रा और बल का ह्रास हो जाता है।"

चिन्ताजन्य निराशा अथवा निराशाजन्य चिन्ता वास्तव में मनुष्य के जीवन तरु के लिए दावाग्नि की तरह ही होती है जो उसकी सारी सम्भावनाओं को भस्म करके रख देती है। 'निराश व्यक्ति को सब ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखलाई देता है। उसका जीवन पुष्प अपनी सारी सुन्दरता और सुगन्ध के साथ मुरझा जाता है। निराशा की काली छाया चारों ओर से घेर कर उसे धूमिल तथा अग्राह्य बना देती है। निराशाग्रस्त व्यक्ति की दिव्य और आनन्दमयी आत्मा अपना वैभव खोकर ग्लानि और म्लान बनी रहती है। चिन्ता और 'निराशा' का सन्ताप मनुष्य को भीतर, बाहर-दोनों प्रकार से खोखला बना देता है।

मानव-जीवन एक सुन्दर पुष्प वाटिका की तरह है। इसमें हास-उल्लास और आनन्द की कमी नहीं है। किन्तु इसको 'पाना' और अनुभव करना एक कला है किन्हीं भी परिस्थितियों में चिन्ता और निराशा से पराभूत न होना। साहसपूर्वक परिस्थितियों को बदलने का प्रयत्न करते रहना। एक सुन्दर सुरम्य वाटिका में, जिसमें तरह-तरह के रङ्ग और रस भरे सुगन्धित फूल खिले हों, कहीं से आग का प्रभाव आने लगे, अथवा उसी के किसी भाग में आग लग जाए तो उसका परिणाम इसके सिवाय और क्या हो सकता है कि सारे हँसते मुस्कराते फूल झुलस जाएँ और हरी-भरी लताएँ और पौधे सूखकर काले पड़ जाएँ। यही बात मानवीय जीवन पर घटित होती है। किसी भूल, भ्रम अथवा प्रमाद में आकर यदि उसमें निराशा और चिन्ता को बसा लिया गया तो निश्चय ही उसका सारा सौन्दर्य, सारा रस, सारा उल्लास नष्ट हो जाएगा।

असफलताओं से भरे इस संसार में यदा-कदा निराशा और चिन्ताओं के झोंके आ जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यहाँ हवा का रुख बदलता

ही रहता है। कभी अनुकूलता होती है तो कभी प्रतिकूलता भी आ जाती है। प्रकृति के इस परिवर्तन से अधिक प्रभावित नहीं होना चाहिए। निराशायें और चिन्ताएँ मनुष्य की मानसिक निर्बलता के कारण ही जीवन में स्थान बना बैठती हैं। मनुष्य को मन की कमजोरियों पर नियन्त्रण रखने का प्रयत्न करना ही चाहिए। प्रतिकूलताओं के समय यदि साहस और दृढ़ता को बनाए रखा जाए तो पता चल जाएगा कि जीवन में प्रवेश करने वाली निराशा क्षणिक होती है। इसमें स्थायी बन बैठने की अपनी विशेषता नहीं होती। इसको स्थायी बनने में मनुष्य की अपनी कमजोरी ही मदद करती है। आने वाली छोटी-छोटी समस्याओं से बहुत अधिक घबरा उठना, आवश्यकता से अधिक चिन्ता करने लगना कायर वृत्ति है। इसका परित्याग कर देना चाहिए, और सङ्कल्पपूर्वक जीवन पथ पर आगे बढ़ते रहना चाहिए।

मनुष्य निर्बल अथवा निरुपाय प्राणी नहीं है। वह महान् शक्ति सम्पन्न महा मानव है। उसकी महिमा अपार है। वह संसार सागर की उत्ताल तरङ्गों के बीच दृढ़तापूर्वक डटे रहने वाले पर्वत-शृङ्ग के समान शक्तिशाली है। निराशा का भाव ही उसे कमज़ोर बना देता है। निराशा एक प्रकार का नास्तिक भाव है। अपने में, अपनी शक्तियों और अपनी क्षमताओं में विश्वास न रखना नास्तिकता के सिवाय और क्या कहा जा सकता है। संध्या को देख-कर, आने वाले प्रभात को विस्मृत कर देना नास्तिकता का ही ऐसा लक्षण है जो मनुष्य को जीवन की सारी सम्भावनाओं के प्रति अविश्वासी बना देता है। सुख के साथ दुःख और दुःख के साथ सुख का क्रम एक दैवी विधान है, ईश्वरीय नियम है। इसमें आस्था न रखना, अज्ञानपूर्ण नास्तिकता का ही एक रूप है। आत्मा में विश्वास रखने वाला सच्चा आस्तिक सुख और दुःख की परिस्थितियों में समान रूप से प्रसन्न बना रहता है। वह जानता है कि पत-झड़ के बाद बसन्त और ग्रीष्म के बाद वर्षा का आना निश्चित है अस्तु वर्त-मान प्रतिकूलता में आगामी अनुकूलता के लिए निराश हो जाना आत्मन्यूनता के सिवाय और कुछ नहीं है।

संसार में आपत्तियों का आना स्वाभाविक है। ये तो अपने क्रम पर

आती ही रहती हैं। मनुष्य ही उन्हें उठाता, सहन करता और वही अपनी शक्तियों के आधार पर उनसे पार पाता है। किन्तु यह सफलता मिलती उसी व्यक्ति को है जो आपत्तियों से घबराकर न तो निराश होता है और न आत्म-शक्ति में आस्था खोता है। आत्म-विश्वासी अपने को परिस्थितियों का दास नहीं बल्कि स्वामी मानता है। उसे अपने ईश्वरी स्वरूप में कदापि अविश्वास नहीं होता और न वह प्रतिकूलताओं को अपने से अधिक बलवान ही स्वीकार करता है। वह आपत्तियों, परेशानियों और प्रतिकूलताओं से टक्कर लेता है, उन पर विजय पाता और आगे के प्रकाश पथ पर अपना जीवन रथ बढ़ाए चला जाता है।

निराशा एक प्रकार से कायरता पूर्ण नास्तिकता है। इसको अपने जीवन में भूलकर भी स्थान मत दीजिए। अपने स्वरूप और अपनी शक्तियों में अखण्ड आस्था रखिए। कभी मत भूलिए कि आप में सर्व शक्तिमान ईश्वर का अंश विद्यमान है। आप हवा के झोंके में उड़ जाने वाले तिनके नहीं हैं। आप उन्नत एवं अडिग पर्वत की भाँति दृढ़ और गौरव पूर्ण हैं। संसार का कोई भी आन्दोलन, विपत्तियों का कोई भी झोंका आपको अपने पथ से विच-लित नहीं बना सकता। संसार के सारे दुःख और सारी विपत्तियाँ अस्थायी होती हैं। इनका अस्तित्व क्षणिक और प्रभाव नश्वर ही होता है। इनको स्थायी भाव से ग्रहण करना स्वयं अपनी कमजोरी और कमी होती है। विप-त्तियाँ, विफलताएँ और दुःखद घटनाएँ मनुष्य के धैर्य, साहस, पुरुषार्थ और आत्म-विश्वास की परीक्षाओं के सिवाय और कुछ नहीं हैं। इन परीक्षाओं को हर्ष पूर्वक देना ही चाहिए। इनसे पलायन करके निराश हो जाना कायरता है।

निराशा मनुष्य में नगण्यता का भाव पैदा कर देती है। निराश मनुष्य अपने विशाल स्वरूप को भूलकर स्वयं को नगण्य और हेय मानने लगता है। वह सोचता है कि मैं तो संसार का एक साधारण प्राणी हूँ। मुझ में कुछ कर सकने की शक्ति का अभाव है। जब कि ऐसा होता नहीं। यद्यपि मनुष्य देखने

में छोटा और साधारण विदित होता है। किन्तु उसमें अपार शक्तियों का भण्डार भरा हुआ है।

स्थिर चित्त से अभीष्ट दिशा में बढ़िए

एक कहावत है कि "काम-काम को सिखाता है।" इसमें जरा भी असत्य नहीं है कि काम-काम में कुशल बना देता है। किन्तु क्या वह आदमी भी कुशल हो सकता है जो आज तो एक अध्यापक का काम करता है, कल मशीनों के कारखाने में चला गया। कुछ दिन किसी कार्यालय में नौकरी की और फिर कोई छोटा-मोटा व्यवसाय ले बैठा। आज कपड़ा बेच रहा है तो कल बिसातखाना खोल दिया? आशय यह कि जो व्यक्ति लाभ के लोभ, परेशानी से बचने, देखा देखी अथवा अपनी अस्थिर वृत्ति के कारण जब तब अपना व्यवसाय अथवा काम बदलता रहता है, क्या वह भी कुशल कार्यकर्ता, एवं निपुण व्यवसायी हो सकता है? नहीं—कभी नहीं। यदि ऐसा सम्भव होता तो एक आदमी न जाने कितने कामों का गुरु बन सकता। किन्तु ऐसा होता कभी नहीं। कोई-कोई आदमी किसी एक ही काम में पूरे दक्ष पाये जाते हैं। बाकी, कुछ न कुछ काम तो सभी करते रहते हैं किन्तु किसी काम के परिपक्व कर्ता नहीं बन पाते।

"काम, काम को सिखाता है"—वाली कहावत तब चरितार्थ होती है जब कोई व्यक्ति किसी एक काम को पकड़ लेता है और पूरे मनोयोग से, एक निष्ठा से निरन्तर करता रहता है। ऐसी दशा में काम कितना ही कठिन एवं नया क्यों न हो उसमें कुशलता प्राप्त हो ही जाती है।

अपनी इसी एकनिष्ठा के गुण पर न जाने कितने अशिक्षित तथा साधारण मिस्त्री तकनीकी क्षेत्र में ऊँचे-ऊँचे पदों पर पहुँचते देखे जा सकते हैं। अंगूठा लगाकर इन्जीनियरों के बराबर वेतन लेते और पढ़ लिखकर नये-नये आये इन्जीनियरों को टोकते और परामर्श देते पाये जा सकते हैं। काम के पुस्तकीय ज्ञान और यथार्थ कर्तृत्व के प्रौढ़ अनुभव में बहुत अन्तर होता है। थ्योरी, डायग्राम तथा नक्शों से सीखी तकनीक किसी को उतना कुशल नहीं

जमा सकती जितना कि एकनिष्ठ मन से किया गया काम, काम में दक्ष बना देता है।

इसी प्रकार एक अनुभवी अध्यापक बच्चों को एक एम० ए० पास प्रोफेसर से कहीं अच्छी तरह पढ़ा तथा समझा सकता है, यदि उक्त एम० ए० पास प्रोफेसर ने शिक्षा क्षेत्र में कुछ दिन साधना नहीं की है समय नहीं बिताया है। कृषि में स्नातक की उपाधि लेकर आने वाला कोई युवक क्या उस वृद्ध किसान से अच्छा खेतिहर सिद्ध हो सकता है जिसका पसीना खेतों की मिट्टी में पिया और दोपहर की खुली धूप ने जिसके बाल पकाकर सफेद कर दिये हैं। निपुणता शिक्षा के आधार पर नहीं, ठोस काम करने और निरन्तर करते रहने से ही प्राप्त होती है। हाँ यह बात जरूर है शिक्षा द्वारा किसी विषय का व्यवस्थित ज्ञान अनुभव से मिलकर कुशलता को अधिक स्तरीय एवं असंदिग्ध बना देता है।

यदि किसी को यह उत्साह है कि वह किसी काम में पूर्ण दक्ष एवं पारङ्गत बने, तो उसे चाहिए कि वह किसी एक काम को पकड़ ले और उसे अपने सम्पूर्ण तन-मन के साथ जीवन समर्पित कर दे। सोच ले कि उसे केवल यही एक काम करना है। इसी में कुशल बनना तथा पारङ्गति प्राप्त करना है। ऐसा निश्चय कर लेने पर उसका मन इधर-उधर दूसरे कामों की ओर भागने से रुक जायेगा। मन की चञ्चलता के ह्रास होने वाली शक्तियों की बचत होगी जो कि उसके मनोनीत काम में नियोजित होकर दक्षता को अधिक जल्दी और अधिक निकट लाने में सहायक होगी। द्विविध अथवा दुश्चिन्त होने से मनुष्य की सारी कार्य शक्तियाँ बिखर जाती हैं जिससे वे निकम्मी तथा अनुपयोगी होकर नष्ट हो जाती हैं। किसी अवरोध में फँसी गाड़ी को जब उसमें जुते बैल साधारण श्रम से नहीं निकाल पाते तब वे दो क्षण सुस्ताने के बहाने अपनी अव्यवस्थित शक्तियों को एकाग्र करके जोर लगाते हैं और गाड़ी अव-रोध को दूर करके बाहर आ जाती है। विद्यार्थी जब बिखरे-बिखरे मन से कोई प्रश्न या थ्योरी को हल नहीं कर पाता तो वह एक बार सँभल कर फिर बैठता है और मन को सम्पूर्ण रूप से नियोजित करता और अपनी समस्या हल

कर लेता है। विचारशील व्यक्ति अपनी कठिनाइयों पर तभी सोचते और हल खोजने का प्रयत्न करते हैं जब उनका चित्त अन्य बातों से मुक्त होता है। सम्पूर्ण शक्तियों को एकाग्र कर कार्य में नियोजित किये बिना किसी विषय में पारंगति प्राप्त नहीं होती, फिर चाहे वह कार्य शारीरिक हो अथवा बौद्धिक, औद्योगिक हो अथवा कला परक।

सर वाल्टर स्काट की गणना अँग्रेजी के सर्वश्रेष्ठ लेखकों में की जाती है। प्रारम्भ में उन्हें पढ़ने का शौक था लिखने की ओर कोई ध्यान नहीं था। किन्तु पढ़ते-पढ़ते और उस पढ़े हुए पर मनन, चिन्तन करते-करते उनकी मौलिक विचारणा शक्ति जाग उठी और उनकी रुचि पढ़ने के साथ-साथ लिखने की ओर भी झुक गई। वे जो कुछ लिखते उसे विविध पत्र-पत्रिकाओं में छपने के लिये भेजते किन्तु उनकी आशा पूरी न होती। यह क्रम बहुत समय तक चलता रहा। उनके शुभचिन्तकों तथा मित्रों ने परामर्श दिया कि वे इस लेखन कार्य को छोड़ें, व्यर्थ समय बर्बाद न करें और कोई ऐसा काम करें जिसमें सफलता मिले। किन्तु सर वाल्टर स्काट एक निष्ठा के विश्वासी थे, अस्तु अपना प्रयत्न जारी रक्खा।

वे अपने वापस आये लेखों को ध्यान से पढ़ते, उनकी कमियां खोजते और पत्र-पत्रिकाओं के विषय तथा अपने लेखों के विषयों में विसंगति की छान-बीन करते रहे। करते-करते उन्होंने अपनी कमियाँ समझ ही लीं उन्हें सुधार कर अपने लेखों को प्रकाशन योग्य बना ही लिया। उनके निरन्तर अभ्यास ने उनकी लेखन क्षमता बढ़ा ही दी और तब उनके लेख पत्र-पत्रिकाओं में धड़ाधड़ छपने ही नहीं लगे बल्कि उनकी माँग भी आने लगी और वे उस क्षेत्र के माने हुए लेखक बन गये।

यदि वे प्रारम्भिक असफलता से हतोत्साह हो जाते और लेखन कार्य का त्याग कर देते तो निश्चय ही वे इस क्षेत्र में इस योग्यता से वंचित रह जाते और इस प्रकार उनका वह समय तथा श्रम निरर्थक चला जाता जो उन्होंने प्रारम्भ में लगाया था। लगे रहने से कुछ थोड़ा-सा समय और लगाने

से उन्होंने अपने पिछले तथा अगले दोनों श्रमों तथा समयों का पूरा-पूरा मूल्य पा लिया।

एकनिष्ठ भाव से लेख लिखते-लिखते उनमें पुस्तक प्रणयन की प्रतिभा विकसित हो गई। उन्होंने उसका भी उपयोग किया और पुस्तकें लिखने लगे। पुस्तकों के प्रकाशन में फिर वही कठिनाई सामने आई। उन्होंने विविध विषयों पर अनेक पुस्तकें लिखीं। किन्तु उन्हें कोई छापने को ही तैयार न हुआ। और यदि कोई पुस्तक कठिनाई से छप गई तो वह लोकप्रिय न हो सकी। पुनः असफलता तथा उत्साह के बीच टक्कर शुरू हो गई। पर सर वाल्टर स्काट ने हिम्मत न हारी वे लिखते और अपनी कमियों को सुधारते ही गये।

जब उनकी पुस्तकों को प्रकाशकों का प्रोत्साहन न मिला तो उन्होंने स्वयं अपना प्रेस लगाने का निश्चय किया और एक मित्र को साझी बनाकर प्रेस खड़ा कर दिया। प्रेस का काम उनके लिये नया था किन्तु उनका साझी उसके दाँव-पेंच जानता था। उसने सर वाल्टर स्काट की उस कमी का अनुचित लाभ उठाया और उनको एक बड़ा घाटा दे दिया। इससे उन पर बड़ा कर्ज चढ़ गया।

किन्तु सर वाल्टर स्काट ने हिम्मत न हारी। वे एक मन और एक लगन से अपने मनोनीत क्षेत्र में जुटे ही रहे। प्रकाशन चलता रहा और पुस्तकें अलोकप्रिय होकर ढेर लगी रहीं। कर्ज पर कर्ज बढ़ता गया और वे हजारों लाखों के देनदार हो गये।

निश्चय ही अब ऐसा समय आ गया था कि किसी की चट्टान जैसी हिम्मत टूट सकती थी। किन्तु उनकी हिम्मत तो वज्रवत दृढ़ एवं अडिग थी। वे एक निष्ठा की शक्ति से अपरिचित न थे और यह भी विश्वास रखते थे कि संसार की गति चक्रात्मक है। असफलता के बाद सफलता और अवनति के बाद उन्नति की बारी होती है। दुःख के बाद सुख-समृद्धि आते ही हैं। रात के बाद दिन और हर संध्या के बाद प्रभात का आना अडिग है। विपत्तियों से घबरा कर मैदान छोड़ भागने वाला भीरु सम्पत्तियों का अधिकारी नहीं बन सकता।

सर वाल्टर स्काट एक विचारवान व्यक्ति, और धैर्यवान कर्मयोगी थे। उन्हें जीवन के हर पहलू का उज्ज्वल पक्ष देखना और अँधेरे पक्ष की उपेक्षा कर देना आता था। वे आशा उत्साह तथा साहस का मूल्य जानते थे, और यह भी जानते थे कि इस प्रकार की विषम परिस्थितियों का आना सृष्टि का एक निश्चित नियम है। आज यदि हम सङ्कट में साहस से काम लेकर एक-निष्ठ भाव से काम में लगे रहें तो कल अवश्य ही यही काम हमारे सारे सङ्कट दूर कर देगा। निदान वे अपने पथ पर दृढ़ता पूर्वक कदम बढ़ाते ही गये।

उन्होंने अपनी अलोकप्रियता का कारण गम्भीरता पूर्वक खोजना शुरू किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उनका विविध विषयों पर लिखना वह प्रमुख कारण है जो उनकी प्रगति को रोके हुए है। कोई मनुष्य बहुत से विषय में पारंगत नहीं हो सकता। सम्पूर्ण मन तथा एकनिष्ठ होकर किसी एक विषय में ही निष्णात होकर सफल हो सकता है। पूर्ण रूप से चिन्तन के बाद असंदिग्ध निष्कर्ष पर पहुँचते ही उन्होंने सुधार कर लिया।

उन्होंने विषय वैभिन्न को छोड़कर केवल एक ऐतिहासिक विषय को उठा लिया और उसी पर पढ़ना-लिखना और विचार प्रारम्भ कर दिया। इस एकत्व का जो सुफल होना चाहिये था हुआ। वे शीघ्र ही ऐतिहासिक उपन्यास लिखने में पारङ्गत हो गये। उनकी तपस्या के फल ऐतिहासिक उपन्यास इतने लोकप्रिय हुए कि कुछ ही समय में वे अपना भयानक रूप से बढ़ा हुआ कर्ज चुकाने में ही सफल नहीं हुए वरन् सम्पन्न भी बन गये और उनका अपना प्रकाशन, अपनी ही लिखी पुस्तकों से उच्च स्तर पर पहुँच गया। उन्होंने अपनी एक निष्ठा एवं एक विषयक लगनशीलता से परिस्थितियों के सिर पर पाँव रखकर संसार के महानतम लेखकों में अपना स्थान बना लिया।

यदि सर वाल्टर स्काट विचारी लगन वाले, अस्थिर चित्त व्यक्ति होते तो क्या वे इस महान सफलता के अधिकारी बन सकते थे? यदि वे अपना लेखन कार्य छोड़कर, व्यवसाय और व्यवसाय छोड़कर नौकरी की ओर दौड़ते रहते तो कौन कह सकता है कि उन्हें जीवन में किसी ऐसी असफलता का

मुँह न देखना पड़ता जो मनुष्य को पूर्ण रूप से निराश एवम् हतोत्साह कर देती है।

यह असंदिग्ध है कि यदि सर वाल्टर स्काट लेखन क्षेत्र में बहुत-सा समय, श्रम एवं शक्तियों को नष्ट करके किसी दूसरे क्षेत्र में जाते तो एक अधूरे व्यक्ति होते। उनकी बची तथा थकी हुई शक्तियाँ उन्हें दूसरे क्षेत्र में भी आगे बढ़ने में सहायक न हो पातीं। एक बार असफलता से घबराकर भाग खड़ा होने वाला व्यक्ति दूसरी बार असफलता से टक्कर ले सकता है इसकी गारन्टी नहीं हो सकती। मैदान छोड़कर एक बार भागे हुए सिपाही का साहस संदिग्ध होता है। वह दुबारा भी भाग सकता है यह बात बलपूर्वक कही जा सकती है। संसार का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जहाँ का अभियान असफलता से निरापद हो। असफलता एवं सफलता का जोड़ा हर क्षेत्र तथा हर काम में साथ-साथ विचरण किया करता है। तब अपने उस पहले क्षेत्र से, भागने का कोई अर्थ समझ में नहीं आता जिसका आपको बहुत कुछ अनुभव प्राप्त हो चुका है जिसकी ऊँच-नीच से आप काफी परिचित हो चुके हैं। और जिसमें थोड़ा-सा और धैर्य, साहस तथा श्रम व समय आपको सफलता की सम्भावना ला सकता है। यदि कोई अपना परिचित क्षेत्र छोड़कर किसी नये क्षेत्र में जाता है तो उसका पूर्व अनुभव उसके किसी काम न आयेगा और नये क्षेत्र का अध्याय 'अ' से प्रारम्भ करना होगा। असफलता के भय अथवा अस्थिर स्वभाव के कारण इस प्रकार का परिवर्तन किसी के लिये कोई बड़ी सफलता नहीं ला सकता।

यदि आप जीवन में सफल होना चाहते हैं, किसी विषय में पारंगति एवं महत्व पूर्ण स्थान के आकांक्षी हैं तो अपनी रुचि, स्थिति, शक्ति तथा सम्भावनाओं का गम्भीरता से अध्ययन कर किसी एक क्षेत्र एक विषय को अपना लें, और तब तक उससे हटकर दूसरी ओर न जायें जब तक कि उसमें रह सकना असम्भव न हो जाये। अपने अपनाये हुये क्षेत्र से प्रयत्नों की पूर्णता किये बिना हटना और जल्दी-जल्दी दूसरे विषयों को पकड़ते छोड़ते रहना चलचित्त चपलता के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है?

विचार ही नहीं कार्य भी कीजिए ?

हर व्यक्ति अपने-अपने क्षेत्र में एक ऊँचा विचारक है। वह चाहे विद्यार्थी हो, अध्यापक हो, लेखक हो, कलाकार, व्यवसाई, उद्योगपति अथवा राजनेता कोई क्यों न हो, अपनी एक विचारधारा रखता है। अधिकतर यह विचार धारा तरक्की करने और जीवन में एक अच्छी सफलता प्राप्त करने से ही सम्बन्धित होती है।

मजदूर एक कुशल मजदूर बनकर मेटगीरी चाहता है, विद्यार्थी ऊँची से ऊँची कक्षा अच्छी से अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण करने का विचार रखता है। अध्यापक प्राध्यापक और प्राध्यापक प्रिंसिपल होने के लिये उत्सुक रहता है। कलाकार ख्याति, व्यवसायी उद्योगपति और उद्योगपति की इच्छा रहती है कि वह संसार का सबसे बड़ा धनवान् बन जाये। सारे संसार में उसके कार-खानों की बनी चीजों की खपत हो। और राजनेता सारी सत्ता अपने हाथ में लाने की कामना करता है। इस प्रकार संसार का प्रत्येक मनुष्य अपनी वर्त-मान स्थिति से आगे बढ़ना चाहता है।

आदि काल से आज तक संसार की जो कुछ भी उन्नति हुई है। वह सब मनुष्य विचारों का ही फल है। जो भी अद्भुत और आश्चर्य में डालने वाले आविष्कार हुए हैं और हो रहे हैं वह सब विचार शक्ति का ही चमत्कार है। जितनी प्रकार की कलाओं, कौशलों और दक्षताओं के दर्शन आज संसार में हो रहे हैं वह सब कुछ नहीं मनुष्य की विचार शक्ति के ही मूर्तरूप हैं। संसार में विभिन्न सभ्यतायें, संस्कृतियाँ, ज्ञान, विज्ञान आदि जो भी विशेषतायें एवं सुन्दरतायें दिखाई देती हैं, वह सब मनुष्य की विचारशीलता का ही परिणाम।

यह अद्भुत विचार शक्ति संसार में सब मनुष्यों को मिली है और वह अपने अनुरूप दिशाओं एवं क्षेत्रों में गतिमती भी होती है तथापि सभी मनुष्य समान रूप से कुछ चमत्कार फल सामने नहीं ला पाते। इसका कारण विचारों की स्पष्टता, परिपुष्टता अथवा तीव्रता को भी माना जा सकता है। किन्तु मनुष्य की इस स्थिति-भिन्नता का प्रमुख कारण विचारों की विशेषता नहीं है।

क्योंकि आये दिन ऐसे हजारों उदाहरण पाये जाते हैं कि बड़े-बड़े तीव्र एवं प्रभावित विचारधारा रखने वाले यथा स्थान पड़े दीखते हैं और सामान्य एवं सौम्य विचार वाले लोग उन्नति कर जाते हैं। वास्तव में इसका मुख्य कारण है मनुष्य के अकर्मक एवं सकर्मक विचार।

किसी भी दार्शनिक, धार्मिक, वैज्ञानिक शिल्पी, कारीगर, कलाकार आदि को क्यों न ले लिया जाये जब तक वह अपने विचारों को कार्य रूप में नहीं बदलता तब तक उनकी उपयोगी अभिव्यक्ति नहीं हो पाती। केवल मन ही मन सोचने, योजनायें रचने और नक्शे बनाने मात्र से कोई काम नहीं चलता। मस्तिष्क का काम है रूप रेखा बनाना और शरीर का काम है, उसे मूर्त रूप देना। तब तक मनुष्य का मस्तिष्क तथा उसका शरीर एक मत होकर किसी योजना को क्रियान्वित नहीं करते तब तक उच्च विचार दिवास्वप्न की भांति बनते बिगड़ते रहते हैं। उनको न तो कोई देख सुन पाता है और न वे किसी के काम आते हैं। इस प्रकार निष्क्रिय एवं अकर्मक विचार किसी दूसरे के काम आना तो दूर स्वयं अपने भी किसी काम नहीं आते। विचारों की शक्ति का उपयोग करने के लिये क्रिया का समन्वय बहुत आवश्यक है।

निरर्थक एवं निष्क्रिय विचार वास्तव में मस्तिष्क के विकार मात्र ही कहे जाने चाहिए। उनसे कोई लाभ होने के स्थान पर हानि ही हुआ करती है। निरर्थक विचारों से होने वाली हानि को देखते हुए तो कहना पड़ेगा कि ऐसी विचार शीलता की अपेक्षा तो विचार शून्यता ही अच्छी है।

मानिये एक व्यक्ति बहुत विचारशील है, वह मन ही मन अनेक योजनायें बनाया करता है, इरादों के घोड़े दौड़ाया करता है, किन्तु उनको सफल करने के लिए करता कुछ नहीं है, तो वह विचारक नहीं विचार व्यसनी ही कहा जायगा। निरर्थक विचार न केवल समय ही खराब करते हैं, अपितु, मनुष्य की शक्ति का ह्रास किया करते हैं। विचार एक वेगवती नदी की तरह उमड़ा करते हैं, यदि उनको क्रिया रूप में मार्ग न दिया जाय तो वे मन और मस्तिष्क को मथते हुए उसे थका डालते हैं, जिससे आलस्य, प्रमाद,

निभ्रान्ति, शिथिलता आदि के विकार उत्पन्न हो जाते हैं, जो किसी प्रकार भी मनुष्य को स्वस्थ नहीं रहने देते।

व्यर्थ विचारक एक स्थान पर बैठा-बैठा मानसिक महल बनाता और बिगाड़ता रहता है। अपनी कल्पना की दुनियाँ में वह इस सीमा तक रम जाता है कि उसे समय एवं सामान्यता का भी ध्यान नहीं रहता। कल्पना करेंगे, विचारों के घोड़े दौड़ाने और मन के महल बनाने में कुछ लगता तो है नहीं, उन्हें किसी भी सीमा तक सुन्दर से सुन्दर बनाया जा सकता है। निरन्तर ऐसा करते रहने से एक दिन इस कल्पना और थोथे विचारों के साथ मनुष्य की भावुकता जुड़ जाती है, जिससे वह अपने मनोवांछित काल्पनिक लोकों को पाने के लिए लालायित हो उठता है। किन्तु कल्पना लोक से उतर कर जब वह यथार्थ के कठोर एवं विषम धरातल पर चरण रखता है तो उसे एक गहरा धक्का लगता है और वह घबराकर फिर अपने काल्पनिक स्वर्ग में भाग जाता है। इस प्रकार की निरर्थक दौड़ धूप से उसकी केवल शक्तियों का क्षय होता है, वरन् वह ऐसा भीरु और सुकुमार हो जाता है कि यथार्थ के धरातल पर पाँव रखते काँपा करता है। उसे अपने चारों ओर वास्तविकतायें कँटीली झाड़ियों की तरह तकलीफ देने लगती हैं। कल्पना की तरह स्निग्ध एवं निर्विरोधी परिस्थितियाँ वास्तविकता के विषम धरातल पर कहाँ? संसार की यथार्थता तो प्रतिरोधों और प्रतिकूलताओं से मिलकर बनी है।

विचारों और क्रियाओं का सन्तुलन जब बिगड़ जाता है तब मनुष्य का मानसिक सन्तुलन भी सुरक्षित नहीं रह पाता। इससे होता यह है कि जब वह भूमि पर अपनी वैचारिक परिस्थितियों को नहीं पाता तब उसका दोष समाज के मत्थे मढ़कर मन ही मन एक द्वेष उत्पन्न कर लेता है। किन्तु समाज का कोई दोष तो होता नहीं। अस्तु वह खुलकर कुछ न कह पाने के कारण मन ही मन जलता-भुनता और कुढ़ता रहता है। इस प्रकार की कुण्ठापूर्ण जिन्दगी उसके लिए एक दुखद समस्या बन जाती है। अपनी प्यारी कल्पनाओं को पा नहीं पाता, यथार्थता से लड़ने की ताकत नहीं रहती और समाज

का कुछ बिगाड़ नहीं पाता—ऐसी दशा में एक अभिशाप जीवन का बोझा ढोने के अतिरिक्त उसके पास कोई चारा नहीं रहता।

इसके विपरीत जिन बुद्धिमानों की विचारधारा संतुलित है, उसके साथ कर्म का समन्वय है, वे जीवन को सार्थक बनाकर सराहनीय श्रेय प्राप्त करते हैं। जीवन में कर्म को प्रधानता देने वाले व्यक्ति योजनायें कम बनाते हैं और काम अधिक किया करते हैं। इन्हें व्यर्थ-विचारधारा को विस्तृत करने का अवकाश ही नहीं होता। एक विचार के परिपुष्ट होते ही वे उसे एक लक्ष्य की तरह स्थापित करके क्रियाशील हो उठते हैं; और जब तक उसकी प्राप्ति नहीं कर लेते किसी दूसरे विचार को स्थान नहीं देते। इस बीच उनका मस्तिष्क उपस्थित विचार लक्ष्य को प्राप्त करने में कर्मों का साथ दिया करता है। कर्मण्यता प्रिय व्यक्ति के चरण सदैव ही यथार्थ की ठोस भूमि पर चलते हैं, कल्पना के आकाश लोक में नहीं!

एक ही विचार लक्ष्य पर अपनी सारी शक्तियों को केन्द्रित कर देने से कोई कारण नहीं कि उसकी उपलब्धि न हो सके। जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करने का सबसे सही और सरल उपाय यही है कि मनुष्य अपने मस्तिष्क को ऐसा नियन्त्रित रक्खे कि वह एक विचार के मूर्तता पा लेने के बाद ही किसी दूसरे विचार को जन्म दे विचारों को क्रम-क्रम से बढ़ाते और उनको क्रिया में उतारते चलने वाला व्यक्ति ही जीवन में सफलता प्राप्त कर पाता है। अन्यथा अनुपयुक्त विचारों की भीड़ में पूर्ण रूप से खोकर कोई श्रेयस्कर लक्ष्य तो दूर मनुष्य स्वयं अपने को ही नहीं पा पाता।

विचार और व्यवहार

विचार और क्रिया दो तत्व हैं, जिनके आधार पर मनुष्य अपने जीवन को समुन्नत और उत्कृष्ट बना सकता है। छोटे काम से लेकर जीवन लक्ष्य की प्राप्ति तक मनुष्य के विचार और आचार में समन्वय पर ही सम्भव है। विचार के अभाव में क्रिया एकांगी और अधूरी है। उससे कोई प्रयोजन नहीं सधता। इसी तरह बिना आचार-क्रिया के विचार भी व्यर्थ ही है, लँगड़ा है, उससे कुछ सिद्ध नहीं होता। खयाली पुलाव भले ही पकाये जाते रहें, यथार्थ

में कुछ भी नहीं होता । दोनों के ठीक-ठीक समन्वय पर ही सफलता और उन्नति सम्भव है । व्यक्ति, समाज, राष्ट्र सभी का विकास इन दोनों के ऊपर है । जहाँ केवल विचार है या केवल क्रिया ही है अथवा दोनों का अभाव है वह व्यक्ति, समाज या राष्ट्र उन्नत नहीं हो सकता ।

आज के बुद्धिवाद और विज्ञान के युग में मानव समाज में इन दोनों ही तत्वों में असमानता पैदा हो गई है । जिनके पास क्रिया की शक्ति है उनके पास कोई उत्कृष्ट विचार ही नहीं । जीवन की भौतिक सफलता, चमक-दमक, भौतिक विज्ञान की घुड़दौड़ में ही उनकी विचार शक्ति लगी हुई है और उससे प्रेरित होकर जो क्रिया होती है वह मानवता के विनाश, व्यापक संहार की सम्भावनायें अधिक व्यक्त करती है । इसी तरह जिनके पास उत्कृष्ट विचार हैं वहाँ क्रिया का अभाव है । फलतः कुछ भी लाभ नहीं होता । स्वयं उनको और समाज को विचारों से कुछ भी नहीं मिल पाता ।

फिर भी आज विचारों की कमी नहीं है । युगों-युगों से महापुरुष, सन्त, महात्मा आदि ने मानवता को उत्कृष्ट कोटि के विचार दिए । विचार ही नहीं उनको क्रियात्मक प्रेरणा दी । कुल मिलाकर आज मानव जाति के पास उत्कृष्ट विचारों का बहुत बड़ा भण्डार है, किन्तु मानव की समस्यायें, उलझनें बढ़ती आ रही हैं । वे सुलझती नहीं ।

आज विचार और आचार का मेल नहीं हो रहा है । बड़े-बड़े वक्ता, उपदेशक, प्रचारक, धर्म की दुहाई देने वाले लोगों की कमी नहीं है । भाषण, उपदेश, प्रचार, आन्दोलन उमड़-घुमड़ कर समाज के ऊपर आते हैं, किन्तु वे रीते, सूखे बादलों की तरह समाज की शुष्कता को नहीं मिटा पाते । समाज की क्या वे अपने अन्तर की जलन को ही शांत नहीं कर पाते । जीवन लक्ष्य की पूर्ति से दूर वे स्वयं ही परेशान देखे जा सकते हैं । उधर अकेले शंकराचार्य, दयानन्द, बुद्ध आदि भी थे जिन्होंने अपने प्रतिकूल युग में भी मानवता को नई राह दी, और आज असंख्यों लोगों के प्रचार, भाषण, उपदेशों के बावजूद भी उनका या समाज का कुछ भी अर्थ नहीं सधता—कोई परिणाम पैदा

नहीं होता। इसका एक ही कारण है कि हमारे विचारों का आचारों से मेल नहीं। हमारी कथनी और करनी में समन्वय नहीं।

जो विचार जीवन में नहीं उतरता, व्यवहार और क्रिया के क्षेत्र में व्यक्त नहीं होता उससे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होने का। वह तो केवल बौद्धिक कसरत मात्र है। किसी भी विषय पर खूब बोलने, खूब सुन्दर व्याख्या करने से विद्वता प्रकट हो सकती है, निन्दा या प्रशंसा हो सकती है, उपस्थित लोग अपनी वाह-वाह कर सकते हैं किन्तु वह वक्ता के जीवन में नहीं उतरता है, समाज में उससे कोई परिवर्तन नहीं आता। पाकशास्त्र पर खूब विवेचना और व्याख्यान करने से किसी का पेट नहीं भर सकता। बातों की रोटी, बातों की कढ़ी से किसका पेट भरा है? भूखे व्यक्ति के सामने, सुन्दर-सुन्दर मिठाइयों, मधुर पदार्थों का वर्णन करने से क्या उसकी वैसी भी तृप्ति हो सकती है जैसी सूखी रोटियों से होती है? प्यासे आदमी को मान-सरोवर की कथा सुनाने से क्या उसकी प्यास दूर हो सकेगी? आज चटपटे, उत्तेजक विचारों की असंख्यों पत्र पत्रिकायें निकलती हैं, लम्बे चौड़े भाषण सुनने को मिलते हैं; फिर भी कोई लाभ नहीं हो रहा है। यदि इन सबमें से दस प्रतिशत भी क्रियात्मक रूप में उतरे तो समाज काफी उन्नत हो जाय।

जहां व्याख्याता, उपदेशक, लेखक कहते कुछ और करते कुछ हैं, कुत्सित विचार, विकार दुष्प्रवृत्तियों को रखकर दूसरों को उपदेश देते हैं, शराब पीकर लोगों से शराब छोड़ने को कहते हैं, वहां कोई सत्परिणाम निकले इसकी बहुत ही कम सम्भावना है।

समाज के कल्याण की बड़ी-बड़ी बातें होती हैं, किन्तु अपने जीवन के बारे में कभी कुछ सोचा है हमने? जिन बातों को भाषण, उपदेश, लेखों में हम व्यक्त करते हैं क्या उन्हें कभी अपने अन्तर में देखा है? क्या उन आदर्शों को हम अपने परिवार, पड़ोस राष्ट्रीय जीवन में व्यवहृत करते हैं? यदि ऐसा होने लग जाय तो हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में महान् सुधार, व्यापक क्रान्ति सहज ही हो जाय। हमारे जीवन के आदर्श ही बदल जांय। घर, समाज, पड़ोस, राष्ट्र का जीवन स्वर्गीय बन जाए।

उच्च विचार, अमूल्य साहित्य, सत्य ज्ञान की बातों का मानव-जीवन में अपना एक स्थान है। इनसे ही चिन्तन और विचार की धारा को बल मिलता है। बड़े-बड़े उपदेश, व्याख्यान, भाषण आदि का समाज पर प्रभाव अवश्य पड़ता है, किन्तु वह क्षणिक होता है। किसी भी भावी क्रान्ति, सुधार रचनात्मक कार्यक्रम के लिये प्रारम्भ में विचार ही देने पड़ते हैं। किन्तु सक्रियता और व्यवहार का संस्पर्श पाये बिना उनको स्थायी और मूर्तरूप नहीं देखा जा सकता। प्रचार और विज्ञापन का भी अपना महत्व है किन्तु जब कर्तव्य और प्रयत्नों से दूर हटकर आत्म प्रवंचना की ओर अग्रसर होता है, पतन के मार्ग पर चलने लगता है।

विचार और क्रिया के समन्वय से ही युग निर्माण के महान कार्यक्रम की पूर्ति सम्भव है। उत्कृष्ट विचारों को जिस दिन हम क्रिया क्षेत्र में उतारने लगेंगे उसी दिन व्यक्ति और समाज का स्वस्थ निर्माण सम्भव होगा।

सद्विचारों को सत्कर्मों में परिणत किया जाय

स्वाध्याय और सत्सङ्ग की बहुत महिमा बताई गई है। आत्म-कल्याण का इन दोनों को प्रधान माध्यम माना गया है। शास्त्रों में पग-पग पर इन दोनों महान् प्रक्रियाओं का माहात्म्य बताया गया है। स्वाध्याय के लिए गीता, रामायण, वेद, उपनिषद् आदि का पारायण नित्य या नैमित्तिक रूप से किया जाता है। कितने ही स्तोत्रों का पाठ भी लोग नियमित रूप से किया करते हैं। सत्सङ्ग का उद्देश्य पूरा करने के लिए कथा, कीर्तन, प्रवचन, यज्ञ, पर्व, उत्सव आदि के आयोजन किये जाते हैं। इनका पुण्य भी बहुत बताया जाता है। लोग श्रद्धापूर्वक इस प्रकार के आयोजन अनुष्ठान करते भी रहते हैं।

स्वाध्याय और सत्सङ्ग की महिमा महत्ता इसलिये है कि उनसे उत्कृष्ट स्तर की विचारणा सम्मिलित होने वाले धर्म प्रेमियों के मन में उत्पन्न हो सके। विचारों से कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। अच्छे बुरे विचारों से ही कर्म बनते हैं। कर्मों का ही फल मिलता है। सत्कर्मों से स्वर्ग और दुष्कर्मों से

नरक की उपलब्धि होती है। सत्सङ्ग और स्वाध्याय का महत्व इसीलिए है कि उनसे सुनने वाले का मन अशुभ दिशा से विमुख होकर शुभ संयोग में अभिरुचि लेने लगता है। इसका प्रयोजन सिद्ध हो जाने पर शरीर की गति-विधियाँ सन्मार्गगामी होती हैं। पुण्य प्रयोजनों की मात्रा बढ़ जाती है, सत्कर्म होने लगते हैं, तदनुसार आत्मिक प्रगति का लाभ भी मिलने लगता है।

बीज से वृक्ष बनता है, इसलिये वृक्ष की उत्पत्ति का श्रेय बीज को मिलता है। पर यह श्रेय मिलता तभी है जब बीज उत्पादन की क्षमता सम्पन्न हो। घुना, सड़ा बीज वह श्रेय प्राप्त नहीं कर सकता। यदि खाद, पानी सुरक्षा आदि का प्रबन्ध न हो तो भी वह बीज वृक्ष रूप में परिणत नहीं हो सकता। खाद, पानी आदि के उपयुक्त साधन न होने पर बोया हुआ बीज या तो उगता ही नहीं, उगता भी है तो जल्दी से सूखकर नष्ट हो जाता है। बीज अपने प्रयोजन में तभी सफल कहा जा सकता है जब वह वृक्ष रूप से विकसित हो सके। प्रगति का श्रेय तभी उसे मिल सकता है।

स्वाध्याय भी एक प्रकार का बीज है। सत्सङ्ग भी इसी की एक शाखा है। कान के माध्यम से जो ज्ञान ग्रहण करते हैं उसे सत्सङ्ग और आँख के सहारे से सीखा समझा जाता है उसे स्वाध्याय कहते हैं। दोनों का प्रयोजन मानसिक स्तर को ऊँचा उठाना है। मस्तिष्क तक ज्ञान की किरणें पहुँचाने वाले दो यन्त्र हैं एक कान, दूसरी आँख, दोनों के द्वारा अलग-अलग रीति से जो प्रेरणाप्रद विचारणायें उपलब्ध की जाती हैं वे अपने साधन द्वार के आधार पर अलग-अलग नाम से पुकारी जाती हैं। कान की उपलब्धि सत्सङ्ग और आँख की उपलब्धि स्वाध्याय के नाम से पुकारी जाती है। वस्तुतः हैं दोनों एक ही। दोनों का अलग-अलग पुण्य, फल या माहात्म्य बताया गया है। वस्तुतः उसे एक का ही—मानना समझना चाहिये।

गुरु को गोविन्द से बड़ा बताया है। इसलिये कि गुरु—गोविन्द को मिला देने का निमित्त साधन सिद्ध होता है। सूर्य से आँखों का मूल्य अधिक कहा जाता है क्योंकि आँखों से सूर्य के दर्शन होते हैं। आँखें न हों तो सूर्य आदि दृश्य पदार्थों के दर्शन का लाभ कैसे मिले? गुरु न हो तो गोविन्द से

मिल सकने का रास्ता कैसे विदित हो ? आधार कायम होने से ही गुरु और शास्त्रों की महिमा गाई गई है । वस्तुतः वे सूर्य या गोविन्द से बड़े नहीं हो सकते ।

इसी प्रकार स्वाध्याय और सत्सङ्ग का जो माहात्म्य बताया जाता है वह वस्तुतः सत्कर्मों का ही माहात्म्य है । चूँकि उत्कृष्ट विचारधाराएँ उत्कृष्ट कर्म करने की प्रेरणा देती हैं और उत्कृष्ट कर्म अपने कर्ता को स्वर्गीय सुख साधन प्राप्त करा देते हैं । इसलिये उत्कृष्ट विचारणाओं के माध्यमों का माहात्म्य प्रमुखता के साथ गाया बताया जाता है । पर यदि कोई स्वाध्याय, सत्सङ्ग मनोविनोद का उपकरण बनकर रह जाय, उसे चिन्ह-पूजा की लकीर पीटने मात्र तक सीमित कर लिया जाय तो नकली सड़े-घुने बीज बोने की तरह वह निरर्थक चला जायगा और जो धर्म, लाभ, स्वाध्याय प्रक्रिया द्वारा हो सकता है वह न हो सकेगा ।

कितने ही धर्मवादी यह मानते पाये जाते हैं कि अमुक ग्रन्थों का स्वाध्याय या अमुक व्यक्ति का सत्सङ्ग कर लेने मात्र से आत्म-कल्याण का लाभ मिल जायगा । कितने ही लोग विविध प्रकार के धार्मिक कर्मकाण्ड इसी दृष्टि से करते हैं । अमुक पुराण की कथा सुन लेने मात्र से वे भारी पुण्य की आशा करते हैं । सत्सङ्ग में आगे आकर विराजते हैं । जो समय इन कामों में लगा उसे ही आत्म-कल्याण का लाभ प्राप्त कर लेने के लिये पर्याप्त मान लेते हैं । वस्तुतः यह भारी भूल है सुनने का कोई लाभ तभी हो सकता है जब उसे जीवन में उतारने या क्रियारूप में परिणत करने के लिए हृदयंगम किया जाय । औंधे मुँह पड़े हुए मृतक के ऊपर अमृत की वर्षा होती रहे तो उसके मुख में अमृत न जाने पर पुनर्जीवित हो सकना सम्भव नहीं । जिस घड़े का मुँह ऊपर न होगा वह घोर वर्षा होने पर भी रीते का रीता ही बना रहेगा । इसी प्रकार स्वाध्याय और सत्सङ्ग से प्राप्त होने वाला ज्ञान यदि अन्तःकरण में गहराई तक न उतरे, चिन्तन-मनन द्वारा उसे आत्मसात न किया जाय और कार्य रूप में परिणित करने की मंजिल पर कदम न बढ़ाये जायें तो सुनने-पढ़ने मात्र से कोई विशेष प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता ।

अनेकों कथा वाचक, वक्ता, प्रवचनकर्त्ता, गायक बड़े-बड़े ऊँचे विचारों के व्याख्यान करते हैं। धर्मशास्त्रों और दर्शनों के गम्भीर विषयों की मार्मिक विवेचना करते हैं। उनकी शैली, विद्वता एवं कला को देखकर लोग प्रसन्न भी खूब होते हैं। इन वक्ताओं को दक्षिणा एवं प्रतिष्ठा भी खूब मिलती है। पर देखा गया है उनमें से अधिकांश अपने वैयक्तिक जीवन में बहुत ही निकृष्ट होते हैं। अपने प्रतिपादित विषयों से सर्वथा प्रतिकूल आचरण करते हैं। ऐसे व्यक्ति भले ही धर्म विषयों के कितने ही बड़े ज्ञाता क्यों न हों उनका वास्तविक लाभ तनिक भी न उठा सकेंगे, वरन् ईश्वर एवं आत्मा के समक्ष वे निकृष्ट मानवों की उसी श्रेणी में खड़े होंगे जिसमें कि आत्म-हत्यारे और कुकर्मी पतित जीव खड़े किये जाते हैं। कारण स्पष्ट है—महत्व विचारों का नहीं कार्यों का है। जो विचार कार्य रूप में परिणित हो सकें, उन्हीं का कोई मूल्य है अन्यथा उन्हें मस्तिष्क का भार ही मानना चाहिए।

गधे की पीठ पर बहुमूल्य सद्ग्रन्थ लाद दिये जायें तो भी वह विद्वान् नहीं कहा जा सकता। जिसके मस्तिष्क में बहुत ही धार्मिक जानकारी घुसी हुई है, जो उनका वर्णन विवेचन कर सकता है वह सचमुच धर्मात्मा भी हो यह आवश्यक नहीं। धर्म निष्ठ होने की परख किसी की जानकारी के आधार पर नहीं, उसकी कार्य प्रणाली से ही हो सकती है। ग्रामोफोन के रिकार्ड बढ़िया भजन गाते, बढ़िया श्लोक बोलते और बढ़िया प्रवचन करते हैं, क्या वे सन्त महात्मा कहला सकते हैं और क्या उच्च आध्यात्मिक स्थिति का पुण्य लाभ कर सकते हैं।

कहने का प्रयोजन यह है कि विचारों का महत्व एवं माहात्म्य जितना अधिक कहा जाय उतना ही कम है पर है तभी जब उन्हें कार्यरूप में परिणित करने की प्रक्रिया भी सम्पन्न हो सके। अन्यथा उन विचारों का इतना मात्र ही लाभ है कि जो समय निरर्थक या बुरे कामों में खर्च होता वह अच्छे विचारों के सान्निध्य में कट गया। स्वाध्याय और सत्संग जैसे महान आध्यात्मिक प्रयोजनोंकी कोई उपयोगिता तभी है—कथा, पाठ-पाठनका लाभ तभी है—जब उन्हें भावनापूर्वक हृदयंगम किया जाय और जो उपयुक्त लगे उसे कार्य

रूप में परिणित करने का तत्परतापूर्वक प्रयास किया जाय। विचारशील लोगों को यही करना चाहिए। यदि स्वाध्याय का कुछ वास्तविक लाभ लेना हो तो उससे आवश्यक प्रेरणा ग्रहण करके उस मार्ग पर चलने की तैयारी भी करनी चाहिए। विचार तो निमित्त मात्र हैं, फल तो कर्मों का होता है। जो विचार–कार्य रूप में परिणित न हो सके उन्हें सड़े, घुने व खाद पानी के अभाव में नष्ट हो जाने वाले निष्फल बीज की ही उपमा दी जायगी। उनसे किसी बड़े लाभ की आशा नहीं की जा सकती।

हम पिछले २८ वर्षों से निरन्तर सद्विचारों का सृजन करते रहे हैं। अखण्ड ज्योति, युग-निर्माण योजना एवं अनेक ग्रन्थों के माध्यम से परिजनों को उत्कृष्ट विचारणाएँ देते रहने का श्रम किया है। साथ ही यह आशा भी रखी है कि जो उन्हें पढ़ेंगे वे उन्हें कार्य रूप में परिणत भी करेंगे। हमारे और पाठकों के समय तथा श्रम की सार्थकता इसी में है। जानकारियाँ तो अन्यत्र से भी मिल सकती हैं। सत्य, दया, भजन, ईमानदारी, उदारता आदि का महत्व उन्होंने पहले से भी सुन रखा होता है। यदि उस सुने हुए को और सुनाते रहा जाय—पिसे को और पीसते रहा जाय तो उससे किसी का कोई क्या हित साधन हो सकेगा ?

हमारे विचारों को जो लोग पसन्द करते हैं, उन्हें चाव से पढ़ते हैं, पत्रिकायें तथा पुस्तकें खरीदते हैं उन्हें कार्यरूप में परिणित करने के लिए—व्यवहारिक जीवन में उतारने के लिए उसी रुचि, श्रद्धा एवं तत्परता से साथ कुछ करने के लिए कटिबद्ध हों। छोटे से छोटा व्यवसाय व्यवहार, समय, श्रम एवं मनोयोग चाहता है। फिर आत्म-कल्याण जैसा महान प्रयोजन पूरा करने के लिए करना कुछ न पड़े—सुनने पढ़ने से ही काम चल जाय, ऐसा नहीं हो सकता।

पाठकों के सामने अब हमने यही प्रसंग उपस्थित किया है कि उनने जो कुछ पढ़ा है, पढ़ते हैं, उस पर चिन्तन-मनन करें, खाये हुए को पचायें और जो सीखा समझा हो उसे व्यावहारिक-जीवन में उतारने का प्रयत्न करें।

/विचार और कार्य दोनों मिलकर संस्कार का रूप धारण करते हैं और

यह संस्कार ही सजगता बनकर महान कार्यों का सम्पादन कर सकने की क्षमता उत्पन्न करता है । शारीरिक बलिष्ठता सम्पादन करने की आकांक्षा रखने वालों को व्यायामशाला में प्रवेश करना ही पड़ेगा । वहीं दण्ड बैठक, मुगदर, डम्बल आदि का सहारा लेकर कठोर व्यायाम में बहुत सारा समय लगाना ही पड़ेगा । बहुत-सा श्रम करना ही होगा । जो शारीरिक बलिष्ठता की पुस्तकें पढ़ लेने या उसका महत्व समझ लेने मात्र से बलिष्ठता प्राप्त कर लेने की आशा लगाये बैठे रहेंगे, उन्हें निराशा के अतिरिक्त और क्या हाथ लगेगा ?

भौतिक लाभों का महत्व हमने जाना है, उनके लिए पर्याप्त समय भी लगाते, श्रम भी करते और जोखिम भी उठाते हैं। अब हमें आध्यात्मिक लाभों का महत्व तथा माहात्म्य समझना चाहिये । ये भौतिक लाभों की तुलना में अनेक गुनी विशेषताओं से भरे-पूरे हैं, भौतिक समृद्धियों की तुलना में आध्यात्मिक सिद्धियों की महत्ता असंख्य गुनी अधिक है । अतएव उनके लिए प्रयत्न और पुरुषार्थ भी अधिक ही करना ही पड़ेगा । धन उपार्जन, शरीर की बलिष्ठता, उच्च शिक्षा, कला-कौशल जैसे भौतिक लाभ प्राप्त करने के लिए जितना प्रयत्न करना पड़ता है, उसकी तुलना में आध्यात्मिक प्रगति के लाभ असंख्य गुने महत्व के होने के कारण प्रयत्नों में भी अधिकता की ही आवश्यकता एवं अपेक्षा रहेगी । मूल्य चुका कर ही इस संसार में कोई विभूति खरीदी जा सकती है, मुफ्त के माल की तरह यहाँ कुछ भी प्राप्त हो सके ऐसी इस सुव्यवस्थित संसार में ईश्वर ने कहीं भी कोई गुंजायश नहीं रखी है ।

आत्म-कल्याण बहुत बड़ा लाभ है । आत्म-ज्ञान, आत्म-सुधार, आत्म-विकास और आत्म-कल्याण से बढ़कर और कोई सफलता इस मानव-जीवन में हो नहीं सकती । ऐसे बड़े प्रयोजन की पूर्ति के लिये स्वाध्याय एवं सत्सङ्ग ही पर्याप्त नहीं, उच्चस्तरीय सक्रियता भी अपेक्षित है । युग-निर्माण योजना इसी सक्रियता को अपने पाठकों को प्रोत्साहित करती है, कर रही है और करेगी। ताकि पाठक जीवन के महान लक्ष्य को प्राप्त कर सकने के लिए वस्तुतः समर्थ हो सकें ।

सद्विचार अपनाये बिना कल्याण नहीं

विचार-शक्ति मानव-जीवन की निर्मात्री-शक्ति है। मानव-शरीर, जिससे आचरण और क्रियायें प्रतिपादित होती हैं, विचारों द्वारा ही संचालित होता है। मनुष्य जितना-जितना उपयोगी, स्वस्थ और उत्पादक विचार बनाता, संजोता और सक्रिय करता चलता है, उतना-उतना ही वह सदाचारी, पुरुषार्थी और परमार्थी बनता जाता है। इसी पुण्य के आधार पर उसका सुख, उसकी शान्ति अक्षुण्ण बनती और बढ़ती जाती है। ईर्ष्या-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मोह आदि के ध्वंसक विचारों से मनुष्य का आचरण विकृत हो जाता है, उसकी क्रियायें दूषित हो जाती हैं, और फलस्वरूप वह पतन के गर्त में गिरकर अशांति और असन्तोष का अधिकारी बनता है।

पागलपन, अपराध और असद्विचारों का चिन्तन करने का ही फल है। किसी विषय अथवा प्रसङ्ग से सम्बन्धित भयानक विचार लेकर चिन्तन करते रहने से मस्तिष्क निर्बल और मानसिक धरातल हल्का हो जाता है। ऐसी दशा में आवेशों, आवेगों और उत्तेजनाओं को रोक सकना कठिन हो जाता है। वह विचार सबलतापूर्वक मनुष्य को संचालित कर अपराध अथवा पाप घटित कर डालने पर विवश कर देते हैं और यदि वह पाप अथवा अपराध करने का साहस, परिस्थिति अथवा अवकाश नहीं पाता—अर्थात् उसका आवेश क्रिया द्वारा निकल पड़ने का आघात करता है, जिससे उसमें विकार पैदा हो जाते हैं और मनुष्य सनकी, पागल अथवा उन्मादी बन जाता है। दोनों स्थितियों में चाहे वह अपराध अथवा पाप कर बैठे या बौद्धिक विकार से ग्रस्त हो जाये, उसका जीवन बिगड़ जाता है, जिन्दगी बरबाद हो जाती है। विचारों में बड़ी प्रचण्ड शक्ति होती है। अस्तु जिन विचारों के चिन्तन में प्रवृत्ति होती हो उनकी अच्छाई-बुराई को अच्छी तरह परख लेने की आवश्यकता है।

वे सारे विचार असद्विचार ही हैं जिनके पीछे किसी को हानि पहुँचाने का भाव छिपा हो। इस 'किसी' शब्द में दूसरे लोग भी शामिल हैं और

स्वयं अपनी आत्मा भी । समाज में प्रतिष्ठापूर्ण स्थान पाने का विचार बड़ा सुन्दर विचार है, सम्मान आत्मा की आवश्यकता है । सबको ही सम्मानित होकर अपनी आत्मा की इस आवश्यकता की पूर्ति करने का विचार करना ही चाहिये । किन्तु यह विचार तभी तक सुन्दर और सद्विचार है, जब तक इसके अन्तर्गत स्पर्धा, ईर्ष्या, द्वेष, लोभ अथवा अहंकार का हानिकारक भाव शामिल नहीं है ।

इस प्रकार का कोई भाव शामिल हो जाने पर इस विचार की सदाशयता समाप्त हो जायेगी और इसका स्थान दूषित विचारों के बीच जा पहुंचेगा । प्रतिष्ठा का एक हेतु धन है । धन के लिये शोषण, दोहन अथवा अनीति पूर्ण उपाय अपना कर किसी को हानि पहुँचाना अथवा अपनी आत्मा को कलुषित करना असद् उपाय है, जिसके कारण प्रतिष्ठा का सद्विचार हो जाता है । पद अथवा स्थान भी प्रतिष्ठा का हेतु है । अपने आपके प्रयत्न और योग्यता के आधार पर पद पाना उचित है । किन्तु जब इस उद्योग को परहित घात, वंचकता, धूर्तता, कपट, छद्म अथवा मलीन क्रियाओं से संयोजित कर दिया जायेगा तो प्रतिष्ठा पाने के विचार की सदाशयता सुरक्षित न रह सकेगी ।

कोई सद्विचार तभी तक सद्विचार है जब तक उसका आधार सदाशयता है । अन्यथा वह असद्विचारों के साथ ही गिना जायेगा । चूंकि वे मनुष्य के जीवन और हर प्रकार और हर कोटि के असद्विचार विष की तरह ही त्याज्य हैं । उन्हें त्याग देने में ही कुशल, क्षेम, कल्याण तथा मंगल है । असद्‌शयतापूर्वक, सम्मान की अपनी आवश्यकता की पूर्ति आत्मा को किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं है ।

ये सारे विचार जिनके पीछे दूसरों और अपनी आत्मा का हित सन्निहित हो सद्विचार ही होते हैं । सेवा एक सद्विचार है । जीव मात्र की निःस्वार्थ सेवा करने से किसी को कोई प्रत्यक्ष लाभ तो होता दीखता नहीं । दीखता है उस व्रत की पूर्ति में किया जाने वाला त्याग और बलिदान । जब मनुष्य अपने स्वार्थ का त्याग कर दूसरे की सेवा करता है, तभी उसका कुछ

हित साधन कर सकता है । स्वार्थी और सांसारिक लोग सोच सकते हैं कि अमुक व्यक्ति में कितनी कम समझ है, जो अपनी हित-हानि करके अकारण ही दूसरों का हित साधन करता रहता है । निश्चय ही मोटी आँखों और छोटी बुद्धि से देखने पर किसी का सेवा-व्रत उसकी मूर्खता ही लगेगी । किन्तु यदि उस व्रती से पता लगाया जाय तो विदित होगा कि दूसरों की सेवा करने में वह जितना त्याग करता है, वह उस सुख—उस शान्ति की तुलना में एक तृण से भी अधिक नगण्य है, जो उसकी आत्मा अनुभव करती है।

एक छोटे से त्याग का सुख आत्मा के एक बन्धन को तोड़ देता है। देखने में हानिकर लगने पर भी अपना हुए वह विचार सद्विचार ही है, जिसके पीछे परहित अथवा आत्महित का भाव अन्तर्हित हो। मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य लोक नहीं परलोक ही है । इसकी प्राप्ति एक मात्र सद्विचारों की साधना द्वारा ही हो सकती है। अस्तु आत्म-कल्याण और आत्म-शान्ति के परम लक्ष्य की सिद्धि के लिए सद्विचारों की साधना करते ही रहना चाहिये।

असद्विचारों के पाश में फँस जाना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। अज्ञान, अबोध अथवा असावधानी से ऐसा हो सकता है । यदि यह पता चले कि हम किसी प्रकार असद्विचारों के पाश में फंस गये हैं तो इसमें चिन्तित अथवा घबराने की कोई बात नहीं है। यह बात सही है कि असद्विचारों में फंस जाना बड़ी घातक घटना है। किन्तु ऐसी बात नहीं कि इसका कोई उपचार अथवा उपाय न हो सके। संसार में ऐसा कोई भी अवरोध नहीं है, जिसका निदान अथवा उपाय न हो। असद्विचारों से मुक्त होने के भी अनेक उपाय हैं। पहला उपाय तो यही है कि उन कारणों का तुरन्त निवारण कर देना चाहिये जोकि असद्विचारों में फँसाते रहे हैं। यह कारण हो सकते हैं—कुसंग, अनुचित साहित्य का अध्ययन, अवांछनीय वातावरण।

खराब मित्रों और संगी-साथियों के सम्पर्क में रहने से मनुष्य के विचार दूषित हो जाते हैं । अस्तु, ऐसे अवांछनीय सङ्ग का तुरन्त त्याग कर देना चाहिये । इस त्याग में सम्पर्कजन्य संस्कार अथवा मोह का भाव आड़े आ

सकता है। कुसङ्ग त्याग में दुःख अथवा कठिनाई अनुभव हो सकती है। लेकिन नहीं, आत्म-कल्याण की रक्षा के लिये उस भ्रामक कष्ट को सहना ही होगा और मोह का वह अविवेक बन्धन तोड़कर फेंक ही देना होगा। कुसङ्ग त्याग के इस कर्तव्य में किन्हीं साधु पुरुषों के सत्सङ्ग की सहायता भी जा सकती है। बुरे और अविचारी मित्रों के स्थान पर अच्छे, भले और सदाचारी मित्र, सखा और सहचर खोजे और अपने साथ लिये जा सकते हैं अन्यथा अपनी आत्मा सबसे सच्ची और अच्छी मित्र है। एक मात्र उसी के सम्पर्क में चले आना चाहिये।

असद्विचारों के जन्म और विस्तार का एक बड़ा कारण असद्साहित्य का पठन-पाठन भी है। जासूसी, अपराध और अश्लील शृङ्गार से भरे गन्दे साहित्य को पढ़ने से भी विचार दूषित हो जाते हैं। गन्दी पुस्तकें पढ़ने से जो छाप मस्तिष्क पर पड़ती है, वह ऐसी रेखायें बना देती है कि जिसके द्वारा असद्विचारों का आवागमन होने लगता है। विचार, विचारों को भी उत्तेजित करते हैं। एक विचार अपने समान ही दूसरे विचारों को उत्तेजित करता और बढ़ाता है।

इसलिये गन्दा साहित्य पढ़ने वाले लोगों का अश्लील चिन्तन करने का व्यसन हो जाता है। बहुत से ऐसे विचार जो मनुष्य के जाने हुए नहीं होते यदि उनका परिचय न कराया जाय तो न तो उनकी याद आये और न उनके समान दूसरे विचारों का ही जन्म हो। गन्दे साहित्य में दूसरों द्वारा लिखे अवांछनीय विचारों से अनायास ही परिचय हो जाता है और मस्तिष्क में गन्दे विचारों की वृद्धि हो जाती है। अस्तु, गन्दे विचारों से बचने के लिये अश्लील और असद्साहित्य का पठन-पाठन वर्जित रखना चाहिये।

असद्विचारों से बचने के लिये अवांछनीय साहित्य का पढ़ना बन्द कर देना अधूरा उपचार है। उपचार पूरा तब होता है, जब उसके स्थान पर सद्-साहित्य का अध्ययन किया जाय। मानव-मस्तिष्क कभी खाली नहीं रह सकता। उसमें किसी न किसी प्रकार के विचार आते-जाते ही रहते हैं। बार-बार निषेध करते रहने से किन्हीं गन्दे विचारों का तारतम्य तो टूट सकता

है किन्तु उनसे सर्वथा मुक्ति नहीं मिल सकती। संघर्ष की स्थिति में वे कभी भले भी जायेंगे और कभी आ भी जायेंगे। अवांछनीय विचारों से पूरी तरह बचने का सबसे सफल उपाय यह है कि मस्तिष्क में सद्‌विचारों को स्थान दिया जावे। असद्‌विचारों को प्रवेश पाने का अवसर ही न मिलेगा।

मस्तिष्क में हर समय सद्‌विचार ही छाये रहें इसका उपाय यही है कि नियमित रूप से नित्य सद्साहित्य का अध्ययन करते रहा जावे। वेद, पुराण, गीता, उपनिषद, रामायण, महाभारत आदि धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त अच्छे और ऊँचे विचारों वाले साहित्यकारों की पुस्तकें सद्साहित्य की आवश्यकता पूरी कर सकती हैं। यह पुस्तकें स्वयं अपने आप खरीदी भी जा सकती हैं और जन और व्यक्तिगत पुस्तकालयों से भी प्राप्त की जा सकती हैं। आजकल न तो अच्छे और सस्ते साहित्य की कमी रह गई है और न पुस्तकालयों और वाचनालयों की कमी। आत्म-कल्याण के लिये इन आधुनिक सुविधाओं का लाभ उठाना ही चाहिये।

मानवीय शक्तियों में विचार-शक्ति का बहुत महत्व है। एक विचार-वान् व्यक्ति हजारों-लाखों का नेतृत्व कर सकता है। विचार शक्ति से सम्पन्न व्यक्ति साधन-हीन होने पर भी अपनी उन्नति और प्रगति का मार्ग निकाल सकता है। विचार शक्ति से ही महापुरुष अपने समाज और राष्ट्र का निर्माण किया करते हैं। विचार शक्ति के आधार पर ही आध्यात्मिक व्यक्ति कठिन से कठिन भव-बन्धनों को भेदकर आत्मा का साक्षात्कार कर लिया करते हैं। विचार शक्ति से ही विचारों के बीच चिन्तक लोग परमात्म सत्ता की प्रतीति प्राप्त किया करते हैं।

विचार मनुष्य जीवन के बनाने अथवा बिगाड़ने में बहुत बड़ा योगदान किया करते हैं। मानव-जीवन और उसकी क्रियाओं पर विचारों का आधिपत्य रहने से उन्हीं के अनुसार जीवन का निर्माण होता है। असद्‌विचार रखकर यदि कोई चाहे कि वह अपने जीवन को आत्मोन्नति की ओर ले जायेगा तो वह अपने इस मन्तव्य में कदापि सफल नहीं हो सकता। मानव-जीवन का संचालन विचारों द्वारा ही होता है। निदान असद्‌विचार उसे पतन की ओर

ही ले आयेंगे। यह एक ध्रुव सत्य है। किसी प्रकार भी इसमें अपवाद का समावेश नहीं किया जा सकता।

अपने विचारों पर विचार करिये और खोज-खोजकर अविवेक निकृष्ट विचार निकालकर उपरोक्त उपायों द्वारा सद्‌विचारों को जन्म दीजिये, बढ़ाइये और उन्हीं के अनुसार कार्य कीजिये। आप लोक में सफलता के फूल चुनते हुये सुख और शान्ति के साथ आत्म-कल्याण के ध्येय तक पहुँच जायेंगे।

दिव्य विचारों से उत्कृष्ट जीवन

संसार में अधिकांश व्यक्ति बिना किसी उद्देश्य का अविचारपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं किन्तु जो अपने जीवन को उत्तम विचारों के अनुरूप ढालते हैं, उन्हें जीवन-ध्येय की सिद्धि होती है। मनुष्य का जीवन उसके भले-बुरे, विचारों के अनुरूप बनता है। कर्म का प्रारम्भिक स्वरूप विचार है अतएव, चरित्र और आचरण का निर्माण विचार ही करते हैं, यही मानना पड़ता है। जिसके विचार श्रेष्ठ होंगे। उसके आचरण भी पवित्र होंगे। जीवन की यह पवित्रता ही मनुष्य को श्रेष्ठ बनाती है, ऊँचा उठाती है अविवेक पूर्ण जीवन जीने में कोई विशेषता नहीं होती। सामान्य स्तर का जीवन तो पशु भी जी लेते हैं किन्तु उस जीवन का महत्व ही क्या जो अपना लक्ष्य न प्राप्त कर सके।

उत्कृष्ट जीवन जीने की जिनकी चाह होती है, जो अन्तःकरण से यह अभिलाषा करते हैं कि उनका व्यक्तित्व सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा कुछ ऊँचा, शानदार तथा प्रतिभा-युक्त हो, उन्हें इसके लिए आवश्यक प्रयास भी जुटाने पड़ते हैं। संसार के दूसरे प्राणी तो प्राकृतिक प्रेरणा से अस्तव्यस्त जीवनयापन करते हैं, किन्तु मनुष्य की यह विशेषता है कि वह किसी भी समय स्वेच्छा से अपने जीवन मान में परिवर्तन कर सकता है। मनुष्य गीली मिट्टी है, विचार उसका साँचा। जैसे विचार होंगे वैसा ही मनुष्य का व्यक्तित्व होगा। इसलिए जब भी कभी ऐसी आकांक्षा उठे तब अपने विचारों को गंभीरतापूर्वक देखें—बुरे विचारों को दूर करें और दिव्य-विचारों को धारण करना प्रारम्भ कर दें, तब निश्चय ही अपना जीवन उत्कृष्ट बनने लगेगा।

प्रत्येक मनुष्य में प्रगति की ओर बढ़ सकने की बड़ी ही विलक्षण शक्ति परमात्मा ने दी है किन्तु यह तब तक अविकसित ही बनी रहती है जब तक श्रेष्ठ आदर्श सम्मुख रखकर वैसा ही उदात्त बनने की चेष्टा नहीं की जाती। मनुष्य को यह भाव अपने मस्तिष्क से निकाल देना चाहिए कि उसके पास पर्याप्त बौद्धिक क्षमता या शैक्षणिक योग्यता नहीं। कई बार भाग्य और परिस्थितियों को भी बाधक मानते हैं किन्तु यह मान्यताएँ प्रायः अस्तित्व-विहीन ही होती हैं। निर्बलता, न्यूनता और अनुत्साह की दुर्बल मान्यताओं से अभिप्रेत मनुष्य जीवन में कोई महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त नहीं कर पाते। अनुभव किया कीजिये कि आप में विश्वास और मनोरथ-सिद्धि की बड़ी विलक्षण-शक्ति भरी पड़ी है। आपको केवल उस शक्ति को प्रयोग में लाना है—आप देखेंगे कि आपके स्वप्न अवश्य साकार होते हैं जो विचार आपको तुच्छ और विनाश पूर्ण दिखाई दें उन्हें एक क्षण के लिए भी मस्तिष्क में टिकने न दें, उन योजनाओं के विचार-विमर्श में ही लगे रहें जिनसे आपको लक्ष्य-प्राप्ति में मदद मिलती है।

सफलता मनुष्य को तभी मिलती है जब मनुष्य अपने विचारों को साहस पूर्वक कर्म में बदल देता है। आप विद्याध्ययन करना चाहते हैं, स्वस्थ बनना चाहते हैं तेजस्वी, बलवान और महापुरुष बनना चाहते हैं—किसी भी स्थिति में आपके विचारों को दृढ़ता पूर्वक पूर्तरूप देना ही पड़ेगा।

निराशाजनक और अन्धकारमय विचारों को एक प्रकार से मानसिक रोग कहा जा सकता है। निराश व्यक्ति अपने भाग्य का विनाश स्वयं ही करते हैं। प्रत्येक कार्य में उन्हें शङ्का ही बनी रहती है। अधूरे मन से सन्दिग्ध अवस्था में किये गए कार्य कभी सफल नहीं होते। यह एक प्रकार के कुविचार के मूल कारण होते हैं। आशावान् व्यक्ति अल्प-शक्ति और विपरीत परिस्थिति में भी अपना मार्ग बना लेते हैं। मंहता, उत्कृष्टता और पवित्रता के विचारों से ही आत्म-विश्वास जागृत किया जा सकता है। इसी से वह शक्ति प्राप्त होती है जो मनुष्य को बहुत ऊँचे उठा सकती है।

भले और बुरे—दोनों प्रकार के विचार मनुष्य के अन्तःकरण में भरे

होते हैं। अपनी इच्छा और रुचि के अनुसार वह जिन्हें चाहता है उन्हें जगा लेता है जिनसे किसी प्रकार का सरोकार नहीं होता वे सुप्तावस्था में पड़े रहते हैं। जब मनुष्य कुविचारों का आश्रय लेता है तो उसका कलुषित अन्तःकरण विकसित होता है और दीनता, निकृष्टता, आधि-व्याधि, दरिद्रता, वन्ध्यता के कष्टात्मक परिणाम सिनेमा के पर्दे की भाँति सामने नाचने लगते हैं। पर जब वह शुभ विचारों में रमण करता है तो दिव्य-जीवन और श्रेष्ठता का अवतरण होने लगता है, सुख, समृद्धि और सफलता के मंगलमय परिणाम उपस्थित होने लगते हैं। मनुष्य का जीवन और कुछ नहीं विचारों का प्रतिबिम्ब मात्र है।

आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश पाने के लिए विचारशोधन अत्यावश्यक है। श्रद्धा-भक्ति आत्म-विश्वास और गहन निष्ठा आदि मनोवृत्तियों के पीछे एक सत्य क्रियाशील रहता है। इस सत्य में ही वह क्षमता और उत्पादक शक्ति होती है जो हमारी व्याकुल अभिलाषाओं को सुख और सफलता का रूप प्रदान करती है। अतः यह मानना पड़ता है कि दिव्य विचार उन्हें ही कह सकते हैं जो सत्य से ओत-प्रोत हों। सत्य कसौटी है जिसमें विचारों की सार्थकता या निरर्थकता का अनुपात व्यक्त होता है। सार्थक विचारों से ही मनुष्य का जीवन भी सार्थक होता है। निरर्थक विचारों को तो दुःस्वप्न ही मान सकते हैं।

हमारी अभिलाषायें जब अन्तर्बल को जगा नहीं पातीं और विजय-कामना मंद पड़ जाती है तो यह देखना चाहिए कि सही विचार की प्रक्रिया में क्या कोई विरोधी भाव कार्य कर रहा है? इनमें से पलायनवाद प्रमुख है। पलायनवाद का सीधा सा अर्थ है अपनी शक्तियों की तुलना में अपने काम को बड़ा या कष्ट-साध्य मानना। जब हम कठिनाइयों से संघर्ष करने का विचार त्याग देते हैं तो वहीं सारी उत्पादक मशीनरी ठप्प पड़ जाती है। सरलता की ओर भागने का प्रयत्न करने लगते हैं। पर इससे कुछ बनता नहीं। चित्त-वृत्तियाँ अस्तव्यस्त हो जाती हैं और महानता प्राप्ति की कामना धूमिल धूसरित होकर रह जाती है।

भाग्यवाद भी ऐसा ही विरोधी भाव है। सच कहें तो भाग्यवाद मनुष्य की सबसे सङ्कीर्ण मनोवृत्ति है। काम, क्रोध, भय, वैर आदि दुष्प्रवृत्तियों का जन्मदाता हम भाग्यवाद को ही मानते हैं। पुरुषार्थ के सहारे मनुष्य बड़ी-बड़ी कठिनाइयों और मुसीबतें झेलकर आगे बढ़ा है—निश्चयात्मक बुद्धि से पुरुषार्थ का उदय होता है और भाग्यवाद का अर्थ है मनुष्य की संशयात्मक स्थिति। सन्देह की स्थिति में कभी किसी का काम सफल नहीं होता क्योंकि इससे विचार-शक्ति निश्चेष्ट और निष्प्राण बनी रहती है। "मैं इस कार्य को अवश्य पूरा करूँगा।" इस प्रकार के संशय रहित संकल्प में ही वह शक्ति होती है जो सफलता सुख और श्रेय प्रदान करती है।

भावुकता, अतिशयता तथा सङ्कीर्णता आदि और भी अनेकों छोटी-छोटी विकायतें मनुष्य के मस्तिष्क में भरी होती हैं। यह दुर्बलताएँ मनुष्य की उच्च विचारधारा को रोकती हैं। निम्नकोटि के विचारों से मनुष्य का जीवन-स्तर भी हीन-दीन और पतित ही बना रहता है अतः उत्कृष्टता प्राप्ति की जिन्हें कामना हो उन्हें अपने मस्तिष्क में उन्हीं विचारों को स्थान देना चाहिए जिससे उसकी सम्पादन-शक्ति बलवान बनी रहे।

आप उन वस्तुओं की कल्पना किया कीजिए जो दिव्य हों, जिनसे आप का जीवन प्रकाशवान् बनता हो। आपका आत्म-विश्वास इतना प्रदीप्त रहे कि अपने प्रयत्न और उत्साह में किसी तरह की शिथिलता न आने पावे। आत्म-सत्ता की महत्ता पर प्रत्येक क्षण विचार करते रहा करें, इससे आपका जीवन अवश्य सार्थक होगा। इस मार्ग पर चलते हुए आज नहीं तो कल आप निश्चय ही उच्च स्थिति प्राप्त कर लेंगे।

विचारों की उत्कृष्टता का महत्त्व

जीवन में विभिन्न सफलता असफलताओं एवं परिस्थितियों का बहुत कुछ आधार मनुष्य के अपने विचार ही होते हैं। किसी भी क्रिया के पहले तत्सम्बन्धी विचारों का गठन होता है। प्राकृतिक नियम ही कुछ ऐसा है जिसके अनुसार मनुष्य जैसा सोचता है ठीक वैसा ही बनता जाता है।

सम्बोधितत्त्व चिन्तन, दार्शनिक विचारों की साधना ने बुद्ध को जीवन के सीमित बन्धनों को तोड़कर असीम की ओर प्रेरित किया। गुलामी में होने वाले अत्याचार, अपमान, अमानवीय व्यवहार ने गांधीजी को स्वतन्त्रता के संघर्ष का कातिदूत बना दिया। इसी तरह समस्त संसार पर एकाधिपत्य करने के विचार से सिकन्दर ने अपना जीवन ही दूसरे देशों पर आक्रमण करने में लगा दिया। देश प्रेम और आजादी के विचारों में मग्न अनेकों भारतीय देश भक्तों ने हँसते-हँसते जीवन का उत्सर्ग किया। संसार के रंग-मंच पर जितने भी उत्कृष्ट, निकृष्ट कार्य हुए उनके पीछे तत्सम्बन्धी विचारों का अस्तित्व ही मुख्य कारण रहा।

कुएं में मुँह करके आवाज देने पर वैसी ही प्रतिध्वनि उत्पन्न होती है। संसार भी इस कुएं की आवाज की तरह ही है। मनुष्य जैसा सोचता है विचारता है वैसी ही प्रतिक्रिया वातावरण में होती है। मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही उसके आस-पास का वातावरण बन जाता है। मनुष्य के विचार शक्तिशाली चुम्बक की तरह हैं जो अपने समान धर्मी विचारों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। एक ही तरह के विचारों के घनीभूत होने पर वैसी ही क्रिया होती है और वैसे ही स्थूल परिणाम प्राप्त होते हैं।

विचार एक प्रचंड शक्ति है और वह भी असीम अमर्यादित, अणु शक्ति से भी प्रबल। विचार जब घनीभूत होकर संकल्प का रूप धारण कर लेता है तो प्रकृति स्वयं अपने नियमों का व्यतिरेक करके भी उसको मार्ग दे देती है। इतना ही नहीं उसके अनुकूल बन जाती है। मनुष्य जिस तरह के विचारों को प्रश्रय देता है, उसके वैसे ही आदर्श, हावभाव, रहन-सहन ही नहीं शरीर में तेज, मुद्रा आदि भी वैसे ही बन जाते हैं। जहाँ सद्विचार की चतुरता होगी वहाँ वैसा ही वातावरण बन जायगा। ऋषियों के अहिंसा, सत्य, प्रेम, न्याय के विचारों से प्रभावित क्षेत्र में हिंसक पशु भी अपनी हिंसा छोड़कर अहिंसक पशुओं के साथ विचरण करते थे।

जहाँ घृणा, द्वेष, क्रोध आदि से सम्बन्धित विचारों का निवास होगा वहाँ नारकीय परिस्थितियों का निर्माण होना स्वाभाविक है। मनुष्य में यदि

इस तरह के विचार घर कर जांय कि मैं अभागा हूं, दुखी हूं, दीन हीन हूं तो उसका उत्कर्ष कोई भी शक्ति साध नहीं सकेगी। वह सदैव दीन हीन परिस्थितियों में ही पड़ा रहेगा। इसके विपरीत मनुष्य में सामर्थ्य, उत्साह, आत्म-विश्वास गौरव युक्त विचार होंगे तो प्रगति-सम्पत्ति स्वयं ही अपना द्वार खोल देगी।

किसी भी शक्ति का उपयोग रचनात्मक एवं ध्वंसात्मक दोनों ही रास्तों से होता है। विज्ञान की शक्ति से मनुष्य के जीवन में असाधारण परिवर्तन हुआ। असम्भव को भी सम्भव बनाया विज्ञान ने। किन्तु आज विज्ञान के विनाशकारी स्वरूप में मानवता का भविष्य ही अन्धकारमय दिखाई देता है। जन मानस में बहुत बड़ा भय व्याप्त है। ठीक इसी तरह विचारों की शक्ति पुरोगामी होने से मनुष्य के उज्ज्वल भविष्य का द्वार खुल जाता है और प्रति-गामी होने पर वही शक्ति उसके विनाश का कारण बन जाती है। गीताकार ने इसी सत्य का प्रतिपादन करते हुए लिखा है "आत्मैव ह्यात्मनो—बन्धुरा-त्मैव रिपुरात्मनः" विचारों का केन्द्र मन ही मनुष्य का बन्धु है और वही शत्रु भी।

आवश्यकता इस बात की है कि विचारों को निम्न भूमि से हटाकर उन्हें ऊर्ध्वगामी बनाया जाय जिससे मनुष्य की उन्नति और उसका कल्याण सध सके। दीन-हीन क्लेश एवं दुःखों से भरे नारकीय जीवन से छुटकारा पाकर मनुष्य इसी धरती पर स्वर्गीय जीवन की उपलब्धि कर सके। वस्तुतः सद् विचार ही स्वर्ग और कुविचार ही नरक की एक परिभाषा है। अधो-गामी विचार मन को चंचल क्षुब्ध असन्तुलित बनाते हैं। उन्हीं के अनुसार दुष्कर्म होने लगते हैं। और इन्हीं में फंसा हुआ व्यक्ति नारकीय यन्त्रणाओं का अनुभव करता है। सद्विचारों में डूबे हुए मनुष्य को धरती स्वर्ग जैसी लगती है। विपरीतताओं में भी वह सनातन सत्य का दर्शन कर आनन्द का अनुभव करता है। साधन सम्पत्ति के अभाव, जीवन के कटु क्षणों में भी वह स्थिर और शान्त रहता है। शुद्ध विचारों के अवलम्बन से ही मनुष्य को सच्चा सुख मिलता है।

विचारों के ऊर्ध्वगामी बन जाने पर नित्य जीवन के सम्पर्क में आने वाले पशु पक्षी, लता, वृक्ष पुष्पों में अथाह आत्मीयता, प्रेम एकता व सहयोग के दर्शन होंगे। अपने कर्तव्य धर्म से एक क्षण भी मनुष्य असावधान नहीं हो सकता? सद्विचारों के होने पर स्वार्थ को पोषण नहीं मिलता, तब धन संपत्ति पाकर भी मनुष्य पथभ्रष्ट नहीं होगा। बुराइयाँ पास भी न फटकेंगी। विचारों में निर्मलता उत्कृष्टता आने पर प्रसाद, प्रसन्नता सुख, शान्ति सन्तोष सब मिल जाते हैं। विचारों की निर्मलता से समस्त दुःख द्वन्द्वों का नाश हो जाता है।

विचारों का तप ही सच्ची तपस्या है। अन्य पशु पक्षी भी भूख प्यास सर्दी गर्मी आदि परिस्थितियों में रहते हैं, इन्हें सहन करते हैं। दीनता गरीबी अभावग्रस्तता में भी अनेकों लोग भूखे, नंगे, बेघर रहते हैं। कई वेदनाओं को सहन करते हैं। किन्तु इनसे उनके मानसिक अथवा आत्मिक जीवन में कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उनका पशुत्व, अमानवीयता, अज्ञान दूर नहीं होता। विचारहीन शारीरिक तप भी मनुष्य को सार्थक सिद्ध नहीं होते। इस तरह तपस्या भी मूलतः विचारों की ही होती है। विचारों की तपस्या से ही ज्ञान का उदय होता है। जीवन के प्रत्येक कार्य, उठने, सोने, खाने, व्यवहार करने आदि कार्यों में विचारशीलता का अवलम्बन लेना ही सच्ची तपस्या है। शुद्ध विचारों के होने पर अन्य बुराइयाँ भी स्वतः दूर हट जाती हैं। जीवन पवित्र बन जाता है। विचार ही केन्द्रित और एकाग्र होते हुए आगे चलकर ध्यान धारणा समाधि के स्तरों पर पहुँच कर मनुष्य को जीवन मुक्त बना देते हैं।

विचारों की साधना कैसे की जाय? कुत्सित विचारों को हटाकर सद्विचारों की स्थापना कैसे हो? यह एक महत्त्व पूर्ण प्रश्न है, जिसकी पूर्ति किसी एकाकी मार्ग से नहीं हो सकती। इसके लिए सर्वाङ्गीण प्रयत्न किए जाने आवश्यक हैं। मुख्यतया स्वाध्याय, चिन्तन, मनन, सत्संग के साथ ही कर्म के माध्यम से विचारों की साधना होती है सद्ग्रन्थों के अध्ययन स्वाध्याय आदि से सद्विचारों की प्रेरणा उद्दीपित होती है। फिर चिन्तन और मनन से उन्हें बल मिलता है। कर्म साधन द्वारा विचारों में स्थायित्व पैदा किया जाता है। विचार को मन मस्तिष्क और जीवन व्यवहार में प्रयुक्त करके जीवन का अङ्ग

बना लेने पर ही वह सिद्धि दायक होता है। विभिन्न साधनायें, विचारों को केन्द्रीभूत करने के लिए ही हैं।

शब्द ज्ञान की जोड़ तोड़, दिमागी चपलता का नाम विचार नहीं है। आजकल ऐसे विचारशीलों की ही अधिकता है, जो शब्दों की दौड़ और दिमागी कसरत के आधार पर तर्क बुद्धि द्वारा ऊँचे विषयों का प्रतिपादन करते हैं। भाषणों, उपदेशों में भी बड़ी-बड़ी बातें कहते हैं। किन्तु खेद कि जिन विचारों को ये लोग प्रतिपादन करते हैं उन्हीं से अपनी छोटी-छोटी समस्याओं का भी समाधान नहीं कर पाते। वस्तुतः समग्र जीवन की साधना का नाम ही विचार है। जो विचार जीवन से सम्बन्धित नहीं वह कितना ही ऊँचा क्यों न हो मनुष्य का कोई हित साधन नहीं कर सकता। जो विचार जितनी मात्रा में जीवन में उतर चुका है उतना ही वह अर्थ पूर्ण होता है। इस तरह सीमित क्षेत्र से उठकर विचार जब असीम में निवास करने लगता है तभी जीवन की पूर्णता और सार्थकता सिद्ध होती है। विचार और जीवन का सम्बन्ध ही विचारों के सामर्थ्य की कसौटी है।

विचारशील लोग दीर्घायु होते हैं

डा० एफ० ई० विल्स, डा० लेलाड कायल, राबर्ट मैक कैरिसन आदि अनेक स्वास्थ्य शास्त्रियों ने दीर्घायु के रहस्य ढूंढे। प्राकृतिक जीवन, सन्तुलित और शाकाहार, परिश्रम शील जीवन, संयमित जीवन—शतायुष्य के लिये यही सब नियम माने गये हैं, लेकिन कई बार ऐसे व्यक्ति देखने में आये जो इन नियमों की अवहेलना करके, रोगी और बीमार रहकर भी १०० वर्ष की आयु से अधिक जिये। इससे इन वैज्ञानिकों को भी भ्रम बना रहा कि दीर्घायुष्य का रहस्य कहीं और छिपा हुआ है। इसके लिये उसकी खोज निरन्तर जारी रही।

अमेरिका के दो वैज्ञानिक डा० मार्टिक और डा० विरेन बहुत दिनों तक खोज करने के बाद इस निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचे कि दीर्घ जीवन का सम्बन्ध मनुष्य के मस्तिष्क एवं ज्ञान से है। उनका कहना है कि अनुसन्धान

के समय ६२ और इस आयु के ऊपर के जितने भी लोग मिले वह सब अधिकतर पढ़ने वाले थे। आयु बढ़ने के साथ-साथ जिनकी ज्ञान वृद्धि भी होती है वे दीर्घ-जीवी होते हैं पर पचास की आयु पार करने के बाद जो पढ़ना बन्द कर देते हैं जिनका ज्ञान नष्ट होने लगता है वे जल्दी ही मृत्यु के ग्रास हो जाते हैं।

दोनों स्वास्थ्य विशेषज्ञों का मत है कि मस्तिष्क जितना पढ़ता है उतना ही उसमें चिन्तन करने की शक्ति आती है। व्यक्ति जितना सोचता, विचारता रहता है उसका नाड़ी मण्डल उतना ही तीव्र रहता है। हम यह सोचते हैं कि देखने का काम हमारी आँखें करती हैं, सुनने का काम कान, साँस लेने का काम फेफड़े, पेट भोजन पचाने और हृदय रक्त परिभ्रमण का काम करता है। विभिन्न अङ्ग अपना-अपना काम करके शरीर की गति-विधि चलाते हैं। पर यह हमारी भूल है। सही बात यह है कि नाड़ी मण्डल की सक्रियता से ही शरीर के सब अवयव क्रियाशील होते हैं इसलिये मस्तिष्क जितना क्रियाशील होगा शरीर उतना ही क्रियाशील होगा। मस्तिष्क के मन्द पड़ने का अर्थ है शरीर के अङ्ग-प्रत्यंगों की शिथिलता और तब मनुष्य की मृत्यु शीघ्र ही हो जायेगी। इससे जीवित रहने के लिये पढ़ना बहुत आवश्यक है। ज्ञान की धारायें जितनी तीव्र होंगी उतनी ही आयु भी लम्बी होगी।

आक्सफोर्ड डिक्शनरी में "हैल्थ" का शाब्दिक अर्थ "शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा से पुष्ट होना" लिखा है। अर्थात् हमारा मस्तिष्क जितना पुष्ट रहता है शरीर उतना ही पुष्ट होगा। और मस्तिष्क के पुष्ट होने का एक ही उपाय है ज्ञान वृद्धि। शास्त्रकारों ने भी ज्ञान वृद्धि को ही अमरता का साधन कहा है। भारतीय ऋषि-मुनियों का दीर्घ जीवन इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। सभी ऋषि दीर्घ जीवी हुए हैं उनके जीवन-क्रम में ज्ञानार्जन ही सबसे बड़ी विशेषता रही है। इसके लिये तो उन्होंने वैभव विलास के जीवन तक ठुकरा दिये थे। वे निरन्तर अध्ययन में लगे रहते थे जिससे उनका नाड़ी संस्थान कभी शिथिल न होने पाता था और वे दो-दो, चार-चार सौ वर्ष तक हँसते-खेलते जीते रहते थे।

पुराणों के अध्ययन से पता चलता है कि वशिष्ठ, विश्वामित्र, दुर्वासा,

व्यास आदि की आयु कई-कई सौ वर्ष की थी। जामवन्त की कथा जगती कपोल कल्पित है पर यदि अमेरिकी वैज्ञानिकों का कथन सत्य है तो उस कल्पना को भी निराधार नहीं कहा जा सकता है। कहते हैं जामवन्त बड़ा विद्वान था। वेद उपनिषद उसे कण्ठस्थ थे वह निरन्तर पढ़ा ही करता था। और इस स्वाध्यायशीलता के कारण ही उसने लम्बा जीवन प्राप्त किया था। वामन अवतार के समय वह युवक था। रामचन्द्र का अवतार हुआ तब यद्यपि उसका शरीर काफी वृद्ध हो गया था पर उसने रावण के साथ युद्ध में भाग लिया था। उसी जामवन्त के कृष्णावतार में भी उपस्थित होने का वर्णन आता है।

दूर ही क्यों कई पैंटर मार्फस ने ही अपने भारत के इतिहास में "तुमिस्थेको गुआ" नामक एक ऐसे व्यक्ति का वर्णन किया है जो सन् १५६६ ई० में ३७० की आयु में मरा था। इस व्यक्ति के बारे में इतिहासकार ने लिखा है कि मृत्यु के समय भी उसे अतीत की घटनाएं इतनी स्पष्ट याद थीं जैसे अभी वह कल की बातें हों। यह व्यक्ति प्रतिदिन ६ घंटे से कम नहीं पढ़ता था। डा० लेलाई कार्डेल लिखते हैं—मैंने शिकागो निवासिनी श्रीमती ल्यूसी जे० से भेंट की तब उनकी आयु १०८ वर्ष की थी। मैं जब उनके पास गया तब वे पढ़ रही थीं। बात-चीत के दौरान पता चला कि उनकी स्मरण शक्ति बहुत तेज़ है वे प्रतिदिन नियमित रूप से पढ़ती हैं।"

प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक डा० आत्माराम और अन्य कई वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया है कि योग से अपने हृदय और नाड़ी आदि की गति पर नियन्त्रण रखकर उन्हें स्वस्थ रखा जा सकता है। यह क्रिया मस्तिष्क से विचारों की तरंगें उत्पन्न करके की जाती है। अध्ययनशील व्यक्तियों में यह क्रिया स्वाभाविक रूप से चलती रहती है इसलिए यदि शरीर देखने में दुबला है तो भी उसमें आरोग्य और दीर्घ जीवन की सम्भावनाएं अधिक पाई जायेंगी।

"मस्तिष्क के क्षति ग्रस्त होने से शरीर बचा नहीं रह सकता। इससे साफ हो जाता है कि मस्तिष्क ही शरीर में जीवन का मुख्य आधार है उसे

जितना स्वस्थ और परिपुष्ट रखा जा सके मनुष्य उतना ही दीर्घजीवी हो सकता है।" उक्त वैज्ञानिकों की यदि यह सम्मति सही है तो ऋषियों के दीर्घजीवन का मूल कारण उनकी ज्ञान-वृद्धि ही मानी जायेगी और आज के व्यस्त और दूषित वातावरण वाले युग में सबसे महत्वपूर्ण साधन भी यही होगा कि हम अपने दैनिक कार्यक्रमों में स्वाध्याय को निश्चित रूप से जोड़कर रखें और अपने जीवन की अवधि लम्बी करते चलें।

आत्म विकास की विचार-साधना

उत्तर गीता के एक प्रसंग में कहा है—

> ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः।
> न चास्ति किंचित कर्तव्यमस्ति चेन्नसतत्त्ववित् ॥

अर्थात्—'जो योगी ज्ञान रूपी अमृत से तृप्त हो गया है और इस प्रकार उसे जो कुछ करना था कर चुका है, ऐसे तत्त्वज्ञानी के लिए कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रहता है।'

ज्ञान क्या है यह समझने की जरूरत है। किसी वस्तु का सम्यक् दर्शन होना ही ज्ञान है। मैं देह हूँ यह मानने से पदार्थ और सांसारिक सुखों के प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है। अनेकों कुटिलतायें और परेशानियाँ अपने प्रपंच में फँसाकर दिग्भ्रांत करती हैं यह अज्ञान का स्वरूप है। मैं आत्मा हूँ परमात्मा का अविच्छिन्न अंश हूँ, यह तत्त्वज्ञान या सम्यक् ज्ञान है। ज्ञान और अज्ञान को व्यक्त करना विचार-साधना का कार्य है, अतः संसार में रहकर यहाँ की परिस्थितियों का सही ज्ञान प्राप्त करने के लिए विचारों के महत्व को स्वीकार किया जाता है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए विचार शक्ति के सदुपयोग की जरूरत होती है, इससे मुमुक्षता प्राप्त होती है।

प्रत्येक विचार, शक्ति के अनुकूल दिशा में फेंककर प्रभाव डालता है। अपने रूप के अनुसार, उधर से वह उसी प्रकार का बन जाता है जिससे तत्सम्बन्धीय विचारों का, तदनुरूप गुण-धर्म की पुष्टि होती है। पवित्र और स्वार्थ रहित विचार शान्ति और प्रसन्नता की तदनुरूप स्थिति का निर्माण करते हैं।

स्वर्ग और नर्क सब विचारों की ही महिमा है। पाप या पुण्य, प्रकाश या अन्धकार, दुःख या सुख की ओर मनुष्य अपने विचार पथ के द्वारा ही अग्रसर होता है। आन्तरिक अपवित्रता की दुर्गन्ध या पवित्रता की सुगन्ध भी विचारों के द्वारा ही फैलती है। गुण-अवगुण सब मनुष्यके विचारों का ही फल है। विचारों में ही मनुष्य का भला-बुरा अस्तित्व होता है। मन का विचारों के साथ अटूट सम्बन्ध है अतः विचारों में विवेक और शुद्धता रखने से मनको संस्कारवान् शुद्ध और शानवान् बनाने की प्रक्रिया स्वतः पूरी हो जाती है। बिना सोचे समझे जैसे कुछ विचार उठें उन्हीं के पीछे-पीछे चलना ही मनुष्य के अज्ञान का प्रतीक है।

विचार एक शक्ति है। आज तक संसार में जो परिवर्तन हुए और जो शक्ति दिखाई दे रही है, यह सब विचारों की ही शक्ति का स्वरूप है। जब तक सद् में स्थित रहता है तब तक रचनात्मक प्रवृत्तियाँ विकसित होती रहती हैं और मनुष्य समाज के सुख-सुविधाओं में अभिवृद्धि होती रहती है किन्तु जब उनमें विकृति आ जाती है तो सर्वनाश के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। अतः सद्विचार को ही रचनात्मक विचार कहेंगे। विचार का अनादर करना अर्थात् उसे विकृत करना भयंकर भूल है। इससे मनुष्य का अहित ही होता है।

विचारों का अर्थ यह नहीं है कि अनेक योजनायें बनाते रहें, वरन् किसी उद्देश्य की गहराई में घुसकर वस्तु स्थिति का सही ज्ञान प्राप्त कर लेना है। परीक्षा में अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होने की इच्छा हुई, यह आपका उद्देश्य हुआ। अब आप यह देखें कि उसके लिए आपके पास पर्याप्त परिस्थितियाँ हैं या नहीं ? आपका स्वास्थ्य इस योग्य है कि रात में भी जागकर पढ़ सकें, इतना धन है कि अच्छी-अच्छी पुस्तकें खरीद सकें या ट्यूशन लगा सकें। केवल योजनायें बनाने से काम नहीं चलता, जब तक उनकी सम्भावनाओं और उन पर अमल करने की सामर्थ्य पर पूर्ण सोच-बीन न करली जाय। विचार मनुष्य की शक्ति और सामर्थ्य के अनुकूल दिशा निर्देश करने में मदद देते हैं अविचारपूर्वक किए गये कार्यों में सफलता की सम्भावना कम रहती है। इन्जीनियर लोग कोई काम शुरू करने के पहले उसका एक प्रस्तावित प्रारूप तैयार कर लेते हैं, इससे उन्हें उस कार्य की अड़चनों का पूर्वाभास

हो जाता है जिसे क्रियान्वित होने पर वे सावधानी से दूर कर लेते हैं। जीवन-निर्माण के लिए विचार भी ऐसी ही प्रक्रिया है। सुव्यवस्थित जीवन के लिये अपने जीवन-क्रम पर बारीकियों से विचार करते रहना मनुष्य की समझदारी का काम है।

सफल व्यक्ति अपने आन्तरिक विचार तथा बाह्य कार्यों में पर्याप्त समन्वय करने की अपूर्व क्षमता रखते हैं। उनके पास क्रियात्मक विचारों की शक्ति होती है अर्थात् वे हर प्रश्न का विचार करते हैं, तब प्रत्यक्ष जीवन में उतारते हैं। इस प्रणाली को विचार नियन्त्रण कहा जाय तो उचित होगा। नियन्त्रित विचारों से ही ठोस लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं।

मनुष्य जो कुछ भी सोचता विचारता है। उसका एक ठोस आकार उसके अन्तःकरण में बन जाता है। कहावत है "जिसका जैसा विचार, उसका वैसा संसार।" अर्थात् प्रत्येक विचार मनुष्य के संस्कारों का अङ्ग बन जाता है। इतना ही नहीं व्यक्तिगत विचारों का प्रभाव विश्व-चेतना पर भी पड़ता है। विश्व के सूक्ष्म आकाश में विचारों की भी एक स्थिति रहती है। वैज्ञानिक इस प्रयास में हैं कि वे सदियों पूर्व लोगों के विचारों का 'टेप-रिकार्ड' कर सकें। उनका दावा है कि अच्छे बुरे किसी भी विचार का अस्तित्व समाप्त नहीं होता। वे विचार सूक्ष्म कम्पनों के रूप में आकाश में विचरण करते रहते हैं और अपने अनुरूप विचारों वाले मस्तिष्क की ओर आकर्षित होकर अदृश्य सहायता किया करते हैं। किसी विषय पर विचार करने से वैसे विचारों की एक शृङ्खला सी बन जाती है, यह सब सूक्ष्म जगत में विचरण करने वाली तरंगें होती हैं जिनसे अनेकों गुप्त रहस्यों का प्रकटीकरण मस्तिष्क में स्वयं ही जाया करता है।

यह संसार जो हम देख रहे हैं वह अव्यक्त का व्यक्त स्वरूप है। अव्यक्त में जैसे विचार उठे, जैसा संकल्प उदय हुआ, जैसी स्फुरणा और वासना जागी व्यक्त में आकर वही रूप धारण कर लेता है। भला-बुरा जैसा भी संसार हमारे चारों तरफ फैल रहा है, उसमें लोगों के विचार ही रूप धारण किये दिखाई पड़ रहे हैं। हमारा विचार जैसा भी भला-बुरा है, उसी के अनु-

रूप ही यह संसार है। यदि हम विचारों को संयम करना जान जायें और इन्हें अच्छाइयों की ओर लगाना सीख जायें तो निःसन्देह इस संसार को सुन्दर प्रिय और पवित्र बना सकते हैं।

दुःख का दूसरा नाम है—अशान्ति। इसकी यदि समीक्षा करें तो यह देखेंगे यह विचारों की अस्त-व्यस्तता और कुरूपता के कारण उत्पन्न होती है। अशान्त को कभी सुख नहीं होता अतः दुःख से बचने का यह सबसे अच्छा उपाय है कि कुविचारों से सदैव दूर रहें। न खुद अशान्त हों न औरों की शांति भङ्ग करें। किन्तु आज-कल अशान्ति पैदा करने में गौरव ही नहीं समझा जा रहा वरन् इसकी लोगों में होड़ लगी है। बुरे कर्मों को, अपनी नीचता और क्षुद्रता प्रकट करते हुए लोग ऐसा गर्व अनुभव करते हैं मानों उन्हें कोई इन्द्रासन प्राप्त हो गया हो। शान्ति के अर्थ को लोग भूल गये हैं। लगता है इस पर कभी विचार ही नहीं किया जाता और लोग अविवेकी पशुओं की तरह सींग-भिड़ाकर लड़ने-झगड़ने में ही अपनी शान समझते हैं।

दूषित विचारों से वातावरण की सारी सुन्दरता नष्ट हो गई है। अब मनुष्य जीवन का कुछ मूल्य नहीं रहा है, क्योंकि कुविचारों के फेर में इतनी अधिक अशान्ति उत्पन्न कर ली गई है कि उसमें थोड़े से सद्-विचारवान् व्यक्तियों को भी चैन से रहने का अवसर नहीं मिलता। इस संसार की सुखद रचना और इसके सौन्दर्य को जागृत करना चाहते हों तो वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन में सद्-विचारों की प्रतिष्ठा करनी ही पड़ेगी और इसके लिए केवल कुछ व्यक्तियों को नहीं वरन् बुराइयों की तुलना में कुछ अधिक प्रभावशाली सामूहिक प्रयास करने पड़ेंगे। तभी सबके हित सुरक्षित रह सकेंगे।

यह कल्पना तभी साकार हो सकेगी जब अपने विचारों के परिवर्तन से सभ्य-सुसंस्कृत समाज की रचना का प्रयत्न करोगे। तुम उसी पदार्थ को अपनी ओर आकृष्ट करते हो जिसके लिए अन्तर में विचार होते हैं। अब तक बुरे विचार उठ रहे थे। अतः वातावरण भी कुरूप-सा अशान्त-सा बन रहा है। प्रेम और प्रेम पूर्ण विचारों से शुभभावनाओं को मार्ग मिलता रहा। अब हमें सोचने का क्रम अपनाना चाहिए और शुभ-विचारों की परम्परा कायमी

चाहिए। प्रेममय विचारों से हम अपने प्रेमास्पद को आकृष्ट करते हैं। यह विचार भी अप्रकट न रह सकेंगे। शीघ्र ही स्वभाव रूप में प्रकट होंगे और शीघ्र ही स्वभाव, क्रिया तथा कर्म रूप में परिणित होकर वैसे ही परिणाम उपस्थित कर देंगे।

विचारों की हरियाली उगाइये

महाकवि शेक्सपीयर ने लिखा है—"शुभ और अशुभ का ज्ञान विचारों से होता है संसार में अच्छा या बुरा जो कुछ भी है वह विचारों की ही देन है।" इससे दो बातें समझ में आती हैं। एक तो यह कि संसार का यथार्थ ज्ञान पैदा करने के लिए विचार शक्ति चाहिये। दूसरे अच्छी परिस्थितियाँ, सुखी जीवन और सुसंस्कृत समाज की रचना के लिये स्वस्थ और नवोदित विचार चाहिये। यह जो रचना हम करते रहते हैं उसकी एक काल्पनिक छाया हमारे मस्तिष्क में आती रहती है, उसी को क्रियात्मक रूप दे देने से अच्छे-बुरे परिणाम सामने आते हैं।

तालाब ऊपर तक भरा होता है, चारों ओर से घिरा रहता है तब उसमें तरह २ की लहर नहीं उठतीं। तालाब के पानी में कम्पन पैदा करना है तो एक कंकड़ी उठाइये और उसे पानी में फेंक दीजिये। लहरें उठने लगेंगी। तालाब की गन्दगी किनारे की हटने लगेगी। पुराने सड़े, गले, जीर्ण, क्षीण, अशुभ, निराशापूर्ण विचारों को भगाने के लिये ऐसी ही हरकत मस्तिष्क में भी करनी पड़ेगी। दिमाग में जो ज्ञान-तत्व भरा हुआ है उसे सजग करने के लिये एक विचार की कंकड़ी फेंकनी पड़ेगी। चिन्तन का शुभारंभ करेंगे तो विचारों की शृंखला बँध जायगी। पक्ष के भी विचार आयेंगे विपक्ष के भी आयेंगे। आप अपनी निर्णायक शक्ति द्वारा भले-बुरे की छटनी करते रहिये। अशुभ विचारों को छोड़ दीजिये और भले विचारों को क्रिया में परिवर्तित कर दीजिये। धीरे-धीरे सही सोचने और सही करने का अभ्यास बन जायेगा।

मान लीजिये आपके सामने रोजगार की समस्या है। अब आप इस तरह सोचना प्रारंभ करें कि इस समस्या का हल किस तरह निकले? अपनी

योग्यता, पूँजी, समय आदि प्रत्येक पहलू पर गहराई से विचार करते चले जाइये। जो बातें ऐसी हों जिन्हें आप पूरा न कर सकते हों उनको छोड़ते जाइये और जिनसे कुछ अच्छे परिणाम निकल सकते हों उनकी प्रत्येक संभावनाओं की छान-बीन कर डालिये। कोई न कोई रास्ता जरूर निकल आयेगा। आपकी समस्या सुलझाने का यही सही तरीका होगा।

याद रखिये कि आपकी ज्ञान-शक्ति जितनी विस्तृत होगी उतने ही व्यापक और महत्वपूर्ण विचार उठेंगे। विचार की खाद है ज्ञान। इसलिये जिस विषय के विचार आप चाहते हैं उस व्यवसाय के जानकार पुरुषों का साथ प्राप्त करना चाहिये या साहित्य के माध्यम से उसे अर्जित किया जाना चाहिये। सम्बन्धित विषय की प्रतिपाद्य पुस्तकों में सोचने के लिये प्रचुर सामग्री मिल जायेगी। उनका अपनी स्थिति के अनुरूप चुनाव करने में आपको विचार मदद देंगे। उत्तम स्वास्थ्य की अभिलाषा हो तो आरोग्य वर्द्धक पुस्तक और पत्रिकायें प्राप्त कीजिये। स्वास्थ्य-संवर्द्धन, व्यायाम, आहार, संयम, प्राणायाम, सफाई आदि जितने भी विषय स्वास्थ्य से सम्बन्धित हों उन पर एक गहरी दृष्टि डालिये आपको अपनी स्थिति के अनुरूप कोई न कोई हल जरूर मिलेगा। किसी स्वास्थ्य-विशेषज्ञ डाक्टर या प्राकृतिक चिकित्सक से भी सलाह लें तो आपकी समस्या और भी आसान होगी। विरोध करने वाले विचार न पैदा कीजिये, अन्यथा निराशा बढ़ेगी और परिश्रम व्यर्थ चला जायगा। आपको केवल रचनात्मक पहलू पर ध्यान देना है।

जाने हुये तथ्यों पर अनेक प्रकार से विचार करने से एक लाभ तो यह होता है कि विचार क्रमबद्ध हो जाते हैं, दूसरे नये सत्यों की खोज होती है, इसलिए ज्ञान और अनुभव बढ़ता है। मस्तिष्क की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने का भी यह अच्छा उपाय है।

विचारों की उड़ान को बिल्कुल काल्पनिक बनाने का प्रयास भी न कीजिये। क्योंकि इससे कोई सही हल नहीं निकल सकेगा। हर समय ध्यान इस बात पर केन्द्रित रहना चाहिए कि जैसे ही आप को कोई निष्कर्ष दिखाई

है वैसे ही विचारों की गति मोड़कर उन्हें विराम दे दीजिए और उसके क्रियात्मक-क्षेत्र में उतर जाइए । जो सोचकर निर्धारित किया था उसे पूरा करने के लिए अमल करना जरूरी है तभी विचार करने का पूर्ण लाभ मिलेगा ।

जब एक काम पूरा हो जाता है तो दूसरा उठाइये । एक साथ अनेक विषयों पर चिन्तन करने से आपके ज्ञान-तन्तु लड़खड़ा जायेंगे और आप एक भी विषय का हल ढूंढ न सकेंगे । खाने का प्रश्न उठे तो केवल खाद्य के ही विषयों पर विचार कीजिए । उस समय पढ़ाई, भ्रमण या मकान बनाने की समस्या पर मानसिक शक्तियों को लगाने से एक भी समस्या का सही और पूर्ण हल न पा सकेंगे । एक काम रहेगा तो मन एकाग्र हो जायगा । इससे वह काम अच्छा बन सकेगा पर थोड़ा-थोड़ा सभी ओर दौड़ने से कोई भी काम पूरा नहीं हो सकेगा । और आपका उतना समय और श्रम व्यर्थ चला जायगा ।

मन की एकाग्रता में बड़ी शक्ति है जब पूर्ण निश्चिन्त होकर दत्त-चित्त से किसी विषय को लेते हैं उसे पूरा करने का एक प्रवाह बन जाता है । रुड-यार्ड किप्लिंग ने छोटी-छोटी कहानियों को एकत्रित करके उसे एक अत्यन्त उत्कृष्ट रचना का रूप दिया तो किसी मित्र ने उससे इस सफलता का रहस्य पूछा । किप्लिंग ने बताया कि वह जो कुछ लिख लेता था उसे चुपचाप रख ही नहीं देता था वरन् उसे बार-बार पढ़ता, उसकी अशुद्धियाँ दूर करता और अनुपयुक्त शब्दों को हटाकर सुन्दर शब्दों का समावेश करता रहता । पूरे समय उसी विषय पर ध्यान केन्द्रित रखने के कारण ही उसकी पुस्तक महान् कृति बन सकी । काम करने की भावना और उस पर पूर्ण एकाग्रता से ही महान् सफलतायें मिलती हैं । लागरिथम (लघुगणक) के सिद्धान्त की खोज करने में नेपियर को बीस वर्ष तक कठिन परिश्रम करना पड़ा था । उसने लिखा है कि "इस अवधि में उसने किसी अन्य विषय को मस्तिष्क में प्रवेश नहीं होने दिया ।"

एक विषय पर ही बार-बार उलट-पलटकर विचार करने से ही उसकी-

पड़ा बन पाती है। इस चिन्तन काल में सार्थक विचारों का एक पूरा समूह ही मस्तिष्क में काम करने लग जाता है जो किसी भी नये अनुसन्धान में मदद करता है। इसलिये जान-बूझकर किसी समस्या के अच्छे-बुरे सभी पहलुओं पर बारीकी से विचार करना चाहिये। इससे सूक्ष्म-विचार तत्त्वों को पकड़ने वाली बुद्धि का विकास होता है और नये-नये विचार पैदा होने की अनेक सम्भावनायें बढ़ जाती हैं।

माइक्रोस्कोप किसी छोटी वस्तु को कई गुना बढ़ाकर दिखाता है, जिससे स्थूल आँखों से छिप जाने वाले विभागों का खुलासा मिल जाता है। विचार करने का दृष्टिकोण भी जितना विकसित होगा तथ्यों की जानकारी उतनी ही अधिक बढ़ेगी। उलझनों और जटिलताओं में भी एक सही हल निकलता हुआ दिखाई देने लगता है। किसानी के नये-नये अनुभव, तथ्य और आँकड़े प्राप्त करने के लिये एक किसी को खाद सम्बन्धी जानकारी अधिक होती है, किसी को उपकरणों का ज्ञान अच्छा होता है। बीज बोना, सिंचाई, कटाई आदि की विधिवत् जानकारी के लिये कई किसानों का परामर्श आवश्यक है। इसी तरह नये विचारों को पैदा करने के लिये एक विषय को अनेक तरह से सोचना पड़ता है।

हमेशा एक तरह के विचारों में घिरे रहना मनुष्य के विकास को सीमित कर देता है। उन्नति की परम्परा यह है कि आपका मस्तिष्क उपजाऊ बने। सुन्दर जीवन का निर्माण करने में नये-नये विचार पैदा करना हर दृष्टि से लाभकारी होता है। ज्ञान और अनुभव बढ़ता है, व्यवस्था आती है और अशुभ परिणामों से बच जाते हैं। विचारों की नई हरियाली में सारा जीवन हरा-भरा दिखाई देता है। इस परम्परा को अपनाकर आपको भी अब पूर्ण विकसित होने का अधिकार पाने का प्रयास करना ही चाहिए। विचारशील बनना, सही विचार करने की पद्धति जान लेना, जीवन विकास के लिये कितना आवश्यक एवं कितना उपयोगी है इसका अनुभव कोई भी व्यक्ति कर सकता है।

ज्ञान संचय श्रेष्ठ सन्निधि

"सच्चा ज्ञान वह है जो हमें हमारे गुण, कर्म, स्वभाव की त्रुटियाँ सुझाने, अच्छाइयाँ बढ़ाने एवं आत्म-निर्माण की प्रेरणा प्रस्तुत करता है। यह सच्चा ज्ञान ही हमारे स्वाध्याय और सत्संग का, चिन्तन और मनन का विषय होना चाहिए।" कहते हैं कि संजीवनी बूटी का सेवन करने से मृतक व्यक्ति भी जीवित हो जाते हैं। हनुमान द्वारा पर्वत समेत यह बूटी लक्ष्मणजी की मूर्छा जगाने के लिए काम में लाई गई थी। यह बूटी औषधि रूप में तो मिलती नहीं है पर सूक्ष्म रूप में अभी भी मौजूद है। आत्म-निर्माण की विद्या—संजीवनी विद्या—कही जाती है इससे मूर्छित पड़ा हुआ मृतक तुल्य अन्तःकरण पुनः जागृत हो जाता है और प्रगति में बाधक अपनी आदतों को, विचार शृंखलाओं को सुव्यवस्थित बनाने में लगकर अपने आपका कायाकल्प ही कर लेता है। सुधरी विचारधारा का मनुष्य ही देवता कहलाता है। कहते हैं देवता स्वर्ग में रहते हैं। देव वृत्तियों वाले मनुष्य जहाँ कहीं भी रहते हैं वहाँ स्वर्ग जैसी परिस्थितियाँ अपने आप बन जाती हैं। अपने को सुधारने से चारों ओर बिखरी हुई परिस्थितियाँ उसी प्रकार सुधर जाती हैं जैसे दीपक के जलते ही चारों ओर फैला हुआ अँधेरा उजाले में बदल जाता है।

स्वाध्याय और सत्संग का विषय प्राचीन काल में आत्म-विश्लेषण और आत्म-निर्माण ही हुआ करता था। गुरुजन इसी विषय की शिक्षा दिया करते थे। उच्च शिक्षा वस्तुतः यही है। कला-कौशल की अर्थकरी जो विद्या स्कूल कालेजों में पढ़ाई जाती है वह हमारी जानकारी और कुशलता को तो बढ़ा सकती है पर आदर्शों और दृष्टिकोण को सुधारने की उसमें कोई विशेष व्यवस्था नहीं है। इसी प्रकार कथा वार्ता के आधार पर होने वाले सत्संग प्राचीन काल के किन्हीं देवताओं या अवतारों के चरित्र सुनाने या ब्रह्म-प्रकृति-स्वर्ग-मुक्ति जैसी दार्शनिक बातों पर तो कुछ चर्चा करते हैं पर यह नहीं बताते कि हम अपने व्यक्तित्व का विकास कैसे करें? आत्म-निर्माण का विषय इतना महत्व हीन नहीं है कि उसे विधिवत् जानने समझाने के लिए कहीं कोई स्थान ही न मिले। ज्ञान की प्रशंसा तो लोग करते हैं उसकी आवश्यकता भी अनुभव

करते हैं आत्म-ज्ञान जैसे उपयोगी विषय की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते। आत्म-शिक्षा और आत्म-ज्ञान का आरम्भ अपनी छोटी-छोटी आदतों के बारे में जानने और छोटी-छोटी बातों को सुधारने से ही हो सकता है। जिसे सोना, जागना, बोलना, बात करना, सोचना समझना, खाना पीना, चलना फिरना भी सही ढङ्ग से नहीं आता वह आत्मा और परमात्मा की अत्यन्त ऊँची शिक्षा को व्यावहारिक जीवन में ढाल सकेगा इसमें पूरा-पूरा सन्देह है। आत्म-ज्ञान का आरम्भ अपनी आन्तरिक स्थिति को जानने और छोटी आदतों के द्वारा उत्पन्न हो सकने वाले बड़े-बड़े परिणामों को समझने से किया जाना चाहिए। आत्म-शिक्षा का तात्पर्य है अपने आपको अपने व्यक्तित्व और दृष्टिकोण को उपयुक्त ढाँचे में ढालने की कुशलता। मोटर विद्या में कुशल वही कहा जायगा जो मोटर चलाना और उसे सुधारना जानता है। आत्म-शिक्षा का ज्ञाता वही है जो आत्म-संयम और आत्म-निर्माण जैसे महत्वपूर्ण विषय पर क्रियात्मक रूप से निष्णात हो चुका है। वेदान्त गीता और दर्शन शास्त्र को घोंटते रहने वाले या उन पर लम्बे चौड़े प्रवचन करने वाले आचरण रहित वक्ता को नहीं, आत्म-ज्ञानी उस व्यक्ति को कहा जायगा जो अपने मन की दुर्बलताओं से सतर्क रहता है और अपने आपको ठीक दिशा में ढालने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है, चाहे वह अशिक्षित ही क्यों न हो।

सुकरात के पास एक व्यक्ति गया और उसने आत्म-कल्याण का उपाय पूछा। वह व्यक्ति गन्दे कपड़े पहने था और बाल बेतरतीब बढ़कर फैले हुए थे। सुकरात ने कहा—"आत्म-कल्याण की पहली शिक्षा तुम्हारे लिए यह है कि अपने शरीर और कपड़ों को धोकर बिलकुल साफ रखा करो और बालों को संभाल कर घर से बाहर निकला करो।" उस व्यक्ति को इस पर सन्तोष नहीं हुआ और पुनः निवेदन किया मेरा पूछने का तात्पर्य मुक्ति, स्वर्ग, परमात्मा की प्राप्ति आदि से था। सुकरात ने बीच में ही बात काटते हुए कहा—सो मैं जानता हूँ कि आपके पूछने का तात्पर्य क्या था। पर उसका आरम्भिक उपाय वही है जो मैंने आपको बताया। स्वच्छता, सौन्दर्य और व्यवस्था की भावना का विकास हुए बिना कोई व्यक्ति उस परम पवित्र,

अनन्त सौंदर्ययुक्त और महान व्यवस्थापक परमात्मा को तब तक न तो समझ सकता है और न उस तक पहुँच सकता है जब तक कि वह अपने दृष्टिकोण में परमात्मा की इन विशेषताओं को स्थान नहीं देता । कोई भी गन्दा, फूहड़, आलसी और अस्त-व्यस्त मनुष्य परमात्मा को नहीं पा सकता और नहीं मुक्ति का अधिकारी हो सकता है । इस मार्ग पर चलने वाले को परमात्मा अपने आप मिल जाता है ।

जप, तप, ध्यान, भजन, पूजा पाठ से निश्चय ही मनुष्य का कल्याण होता है पर इनके साथ-साथ आत्म-सुधार की अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रक्रिया भी चलती रहनी चाहिए। यह सोचना भूल है कि भजन करने से सब सद्गुण अपने आप आ जाते हैं। यदि ऐसा रहा होता तो भारत में ५६ लाख सन्त-महात्माओं, पण्डा-पुजारियों की जो इतनी बड़ी सेना विचरण करती है, यह लोग सद्गुणी और सुधरे हुए विचारों के और उच्च चरित्र के रहे होते और उनने अपने प्रभाव से सारे देश को ही नहीं सारे विश्व को सुधार दिया होता। पर हम देखते हैं कि इन धर्मजीवी लोगों में से अधिकांश का व्यक्तित्व सामान्य श्रेणी के व्यक्तियों से भी गया-बीता है। इसलिए हमें यह मानकर ही चलना होगा कि भजन के साथ-साथ व्यक्तित्व सुधारने की, आत्म निर्माण की समानान्तर प्रक्रिया को भी पूरी सावधानी और तत्परता के साथ चलाना होगा। आत्म-सुधार कर लेने वाला व्यक्ति बिना भजन किये भी पार हो सकता है पर जिसका अन्तःकरण मलीनताओं और गन्दगियों से भरा पड़ा है वह बहुत भजन करने पर भी अभीष्ट लक्ष तक न पहुँच सकेगा । भजन के लिए जहाँ उत्साह उत्पन्न किया जाय वहाँ आत्म-निर्माण की बात पर भी पूरा ध्यान दिया जाय। अन्न और जल दोनों के सम्मिश्रण से ही एक पूर्ण भोजन तैयार होता है। भजन की पूर्णता और सफलता भी आत्म-निर्माण की ओर प्रगति किये बिना संदिग्ध ही बनी रहेगी ।

परिवार को उत्तराधिकार में देने के लिए पाँच उपहारों की चर्चा पिछले लेख में की जा चुकी है। श्रमशीलता, उदारता, सफाई, समय का सदुपयोग एवं शिष्टाचार। आर्थिक स्थिति के सुधार की चर्चा करते हुए ईमानदारी,

तत्परता, मधुरता एवं मितव्ययिता की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है। स्वास्थ्य सुधार के लिए आत्म-संयम, इन्द्रिय निग्रह, निश्चिन्तता, मानसिक संतुलन एवं उचित आहार-विहार का प्रतिपादन किया गया है। यह सब आत्म-निर्माण की ही प्रक्रिया है। शरीर, परिवार, धन, प्रतिष्ठा, दूसरों की अपने प्रति सहानुभूति आदि अनेक लौकिक लाभ तो इन गुणों के हैं ही पर इनसे भी अनेक गुणा लाभ आत्म-शान्तिभाव है। ज्योति जहाँ रहेगी वह स्थान गरम जरूर रहेगा इसी प्रकार जिस मन में सत्प्रवृत्तियाँ जागृत रहेंगी उसमें सन्तोष, शान्ति एवं उल्लास का वातावरण निश्चित रूप से बना रहेगा। अध्यात्म नगद धर्म है उसका परिणाम प्राप्त करने के लिए किसी को मृत्यु के उपरान्त तक स्वर्ग प्राप्ति की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। अपना दृष्टिकोण बदलने के साथ-साथ निराशा आशा में बदल जाती है और खिन्नता का स्थान मुस्कान ग्रहण कर लेती है। असन्तोष और उद्वेग में जलते हुए व्यक्ति जिस दृष्टिकोण को अपना कर सन्तोष एवं उल्लास का अनुभव कर सकें वस्तुतः वही अध्यात्म है। यह सच्चा अध्यात्म गूढ़ रहस्यों से भरी योग विद्याओं की तुलना में कहीं अधिक सरल भी है और प्रत्यक्ष लाभदायक भी।

ज्ञान की विभूति प्राप्त करने लिए विवेकशीलता एवं दृष्टिकोण का परिमार्जन ही मूल आधार है। हमारी अनेकों मान्यताएँ दूसरों के अनुकरण एवं प्रचलित परम्पराओं के आधार पर बनी होती हैं। उनके पीछे विवेक नहीं, आग्रह भरा रहता है। सोचने विचारने का कष्ट बहुत कम लोग उठाते हैं। अपनी श्रेणी के अथवा अपने से बड़े समझे जाने वाले लोग जो कुछ करते हैं, जैसे सोचते या करते हैं आमतौर से हीन मनोवृत्ति के लोग वही प्रकार सोचने लगते हैं। हमारी सोचने की पद्धति स्वतन्त्र होनी चाहिए। हमें विचारक और दूरदर्शी बनना चाहिए और हर कार्य के परिणाम की सुव्यवस्थित कल्पना करते हुए ही उसे करना चाहिए। अनेकों सामाजिक कुरीतियाँ, हमारा समय और धन बुरी तरह बर्बाद कराती हैं। हम अन्धानुकरण की मानसिक दुर्बलता के शिकार होकर उसी लकीर को पीटते रहते हैं और यह निश्चय नहीं कर पाते कि जो उचित है उसे ही करने के लिए अपनी स्वतन्त्र प्रतिभा, साहस,

नैतिकता एवं विवेकशीलता का परिचय दें। यदि इतना साहस समेट लिया जाय तो न केवल हमारी अपनी ही बर्बादी बचे वरन् दूसरों के लिए भी एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत हो।

हमें ऐसा साहस एकत्रित करते रहना चाहिए। परिवार को रुष्ट करके उन्हें विरोधी बनाकर खिन्न करके तो नहीं पर प्रयत्नपूर्वक धीरे-धीरे उनके विचार बदलते हुए धन और समय बर्बाद करने वाली कुरीतियों और फिजूल-खर्चियों को अवश्य ही हटाना चाहिए। इनके स्थान पर ऐसे मनोरंजक कार्य-क्रम प्रस्तुत करने चाहिए जो रुखापन न आने देकर दैनिक जीवन को उत्साह एवं उल्लासमय भी बनाये रहें और उपयोगी भी हों। संगीत, सामूहिक प्रार्थना पारस्परिक विचार विनिमय, छोटे-छोटे खेल, भाषण, सजावट, सफाई, रसोई, व्यवस्था, चित्रकारी, फूल पौधे आदि के कार्यक्रम यदि सब लोग हिल-मिलकर चलावें तो यह छोटी-छोटी बातें भी उल्लास और उत्साह का वातावरण उत्पन्न किये रह सकती हैं। कुरीतियों और फिजूलखर्चियों के पीछे कुछ मनोरंजन कुछ नवीनता का कार्यक्रम छिपा रहता है इसीलिए लोग उसकी ओर आकर्षित रहते हैं। यदि हम अन्य प्रकार से उत्साह एवं नवीनता उत्पन्न किये रह सकें तो कुरीतियों में धन एवं समय बर्बाद करने की इच्छा स्वतः ही समाप्त हो जायगी। सादगी को भी कलात्मक प्रक्रिया के साथ बड़ी सुन्दर एवं नयनाभि-राम बनाया जा सकता है। हमें इसी ओर ध्यान देना चाहिए।

परिस्थितियों का बदलना हमारे गुण, कर्म, स्वभाव के परिवर्तन पर निर्भर है। इस तथ्य पर इतनी अधिक देर तक, इतने अधिक प्रकार से विचार किया जाना चाहिए कि यह सत्य हमारे अन्तःकरण में गहराई तक प्रवेश कर जावे। स्वाध्याय और सत्सङ्ग का यही प्रधान विषय रखा जाय। पढ़ने और सुनने की आदत बहुत कम लोगों की होती है जिन्हें होती है वे केवल मनो-रंजन की या कल्पना लोक में बहुत ऊँची उड़ान लगाने वाली बातें पढ़ना या सुनना पसन्द करते हैं। किस्से, कहानियाँ, उपन्यास, जासूसी, तिलस्म, वासनात्मक साहित्य आज बहुत पढ़ा, बेचा और छापा जाने लगा है और सिनेमा, नाटक, सरकस, खेल-कूद, प्रदर्शन, नृत्य संगीत, कथावार्ता आदि में भी मनो-

रंजन की ही प्रधानता रहती है। लोग कल्पना लोक में विचरण करते रहना पसन्द करते हैं। यह आदत ज्ञान-वृद्धि में जितनी सहायक होती है उससे कहीं अधिक बाधक होती है। हमारे बहुमूल्य समय का उपयोग जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता आत्म-निर्माण की विचारधारा के अवगाहन में लगना चाहिए। ऐसा साहित्य कम मिलता है पर जहाँ कहीं से थोड़ा बहुत मिलता है उसे अवश्य ही एकत्रित करना चाहिए। घर में जिस प्रकार जेवर और अच्छे कपड़ों का थोड़ा बहुत संग्रह रहता ही है उसी प्रकार सत्साहित्य की एक अलमारी हर घर में रहनी चाहिए और उसे पढ़ने और सुनने का कार्यक्रम नित्य ही चलते रहना चाहिए।

अपना और अपने परिवार का सुधार इसी कार्यक्रम के साथ आरम्भ हो सकता है। पहले विचार बदलते हैं फिर उसका असर कार्यों पर पड़ता है। कार्य वृक्ष है तो विचार उसका बीज। बीज के बिना वृक्ष का उत्पन्न होना और बढ़ना सम्भव नहीं। हम अच्छे कार्यों की आशा करते हैं, पर उनके लिए अच्छे विचारों को मस्तिष्क में लाने का प्रयत्न नहीं करते। अच्छी परिस्थितियाँ प्राप्त करने के लिए हर व्यक्ति लालायित है। स्वास्थ्य, धन, विद्या, बुद्धि, सुमधुर पारिवारिक सम्बन्ध आदि विभूतियाँ हर कोई चाहता है पर यह भूल जाता है कि यह बातें अच्छे कार्यों के किये जाने पर निर्भर है। काम को ठीक ढङ्ग से, उचित रूप से किया जाय तो सफलता का मार्ग सरल हो जाता है और हर मनचाही उचित सफलता हर किसी को मिल सकती है। असफलताओं का सबसे बड़ा कारण कार्यक्रमों की अव्यवस्था ही होता है और कार्यों का सुव्यवस्थित होना, सुलझी हुई विचारधारा एवं सन्तुलित दृष्टिकोण पर निर्भर रहता है। सुलझे हुए विचारों का अस्तित्व आज काल्पनिक जंजाल से भरे साहित्य, भाषण एवं दृश्यों के पीछे विलुप्त होता चला जा रहा है। ज्ञान गङ्गा सूखती चली जा रही है और उसके स्थान पर कुविचारों की वैतरणी उफनती चली आ रही है। इन परिस्थितियों को बदलना नितान्त आवश्यक है। हमें अपने और अपने परिवार के लोगों की विचारधारा में ऐसे तत्वों का

अधिकाधिक समावेश करना चाहिए जो जीवन की समस्याओं पर सुलझा हुआ दृष्टिकोण उपस्थित करें और हम आत्म निर्माण की समस्या सुलझाने के लिए आवश्यक प्रेरणा एवं प्रकाश प्राप्त करें।

विवेक ही ज्ञान है। अविवेक का अन्धकार हमारे चारों ओर छाया हुआ है इसे हटाकर विवेक का प्रकाश उत्पन्न करना नितान्त आवश्यक है। सत्साहित्य से, पारस्परिक विचार विनिमय से एवं हर बात पर औचित्य की दृष्टि रखकर विचार करने से वह विवेक प्राप्त हो सकता है जिससे हम प्रत्येक समस्या के वास्तविक रूप को समझ सकें और उसके वास्तविक रूप को समझ सकें। और उसका वास्तविक हल ढूंढ सकें। ज्ञान का तात्पर्य इस सुलझे दृष्टिकोण से ही है। जिसे भी यह प्राप्त हो गया उसके लिए जीवन भार नहीं रह जाता वरन् एक मनोरंजन बन जाता है। लोग क्या कहेंगे, इस चक्कर में कितने ही व्यक्ति आत्म-हनन करते रहते हैं। इसी दृष्टि से लोग फैशन बनाते फिरते हैं। दूसरों की आँखों में अपनी अमीरी जताने के लिए ही लोग अनेक प्रकार की फिजूलखर्ची करते रहते हैं। विवेक प्राप्त होने से ही मनुष्य इस व्यर्थ के भ्रम से बच सकता है। सच बात यह है कि हर आदमी अपनी निज की समस्याओं में व्यस्त है उसे इतनी फुरसत नहीं कि दूसरों के फैशन या फिजूलखर्ची को अधिक ध्यान से देखे और कोई मान्यता स्थिर करे।। हजारों बेकार की बातें हर आदमी के सामने से निकलती रहती हैं और वह उन्हें देखते हुए भी अनदेखा-सा बना रहता है हमारी यह मेंहगी दोखीखोरी जिसके कारण अपना समय और धन ही नहीं जीवन भी बुरी तरह बर्बाद हो जाता है, लोगों के लिये बेकार की और दो कौड़ी की बात है। यदि यह वास्तविकता समझ में आ जाय तो हम दूसरों को खुश या प्रभावित करने के लिए अपनी बर्बादी करने की बेवकूफी को सहज ही छोड़ सकते हैं और अपनी शक्तियों को उन कार्यों में लगा सकते हैं जो लौकिक एवं पारलौकिक सुख शान्ति के लिये आवश्यक हैं।

विवेक मानव जीवन की अत्यन्त महत्वपूर्ण सम्पदा है। इस सम्पदा को कमाने और बढ़ाने के लिये हमें वैसा ही प्रयत्न करना चाहिये जैसा धन,

यश, प्रतिष्ठा आदि की प्राप्ति के लिए करते रहे हैं। गीता में कहा गया है कि ज्ञान की तुलना में और कोई श्रेष्ठ वस्तु इस संसार में नहीं है। इस सर्वश्रेष्ठ वस्तु को अधिकाधिक मात्रा में उपलब्ध करके हम श्रेष्ठतम उत्कर्ष एवं आनन्द प्राप्त करने के लिए अग्रसर क्यों न हों ?

समाज की अभिनव रचना—सद्विचारों से

सामाजिक सुख-शांति के लिये केवल राज-दण्ड अथवा राज-नियमों पर निर्भर नहीं रहा जा सकता और न उसकी प्राप्ति मात्र निन्दा करते रहने से ही सम्भव है। राजदण्ड, राज-नियम और सामूहिक निन्दा भी आवश्यक है, उनकी उपयोगिता भी कम नहीं है, तथापि यह समाज में व्याप्त पापों और अपराधों का पूर्ण उपचार नहीं है। इसके साथ निरपराध एवं निष्पाप समाज की रचना के लिये मनुष्यों के आन्तरिक स्तर का सद्विचारों से भरापूरा रहना भी आवश्यक है। मनुष्यों का अन्तःकरण जब तक स्वयं ही उज्ज्वल व सदाशयतापूर्ण न होगा, निष्पाप समाज की रचना का स्वप्न अधूरा ही बना रहेगा। राज नियमों के प्रति आदर, निन्दा के प्रति भय और समाज के प्रति निष्ठा भी तो ऐसे व्यक्तियों में होती है, जिनके हृदय उदार और उज्ज्वल होते हैं। मलीन और कलुषित हृदय वाले अपराधी लोग इन सबकी परवाह कब करते हैं।

संसार में सारे कष्टों की जड़ कुकर्म ही होते हैं, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं। संसार में जिस परिणाम से कुकर्म बढ़ेंगे, दुःख-क्लेश भी उसी मात्रा में बढ़ते जायेंगे। यदि संसार में सुख शांति की स्थापना वांछनीय है तो पहले कुकर्मों को हटाना होगा। कुकर्मों को घटाने, हटाने और मिटाने का एक ही उपाय है कि मनुष्य की विचार-धारा में आदर्शवाद का समावेश किया जाये। मस्तिष्क को घेरे रहने वाली अनैतिक एवं अवांछनीय विचार-धारा ही कुकर्मों को जन्म दिया करती है। यदि विचार सही और शुद्ध हों तो मनुष्य से कुकर्म बन पड़ने की सम्भावना नहीं है।

विचारों की बुराई ही बुरे कर्मों के रूप में प्रकट होती है। जिस प्रकार हिमपात का कारण हवा में पानी का होना है—यदि हवा में पानी का अंश न हो तो बरफ गिर ही नहीं सकती; पानी ही तो जम कर बरफ बनती है।

इसी प्रकार यदि विचारों में बुराई का अंश न हो तो अपकर्म न बन पड़ें। मनुष्य के कुकर्म उसके विचारों का ही, स्थूल रूप होता है। अस्तु, कुकर्मों को नष्ट करने के लिये विचारों में व्याप्त मलीनता को नष्ट करना ही होगा।—

मनुष्य के बिगड़े विचारों का सुधार राज-नियमों अथवा राज-दण्ड के भय से नहीं हो सकता। उसके लिये तो उसकी विरोधी विचार-धारा को ही ही सामने लाना होगा। असद्विचारों का उपचार सद्विचारों के सिवाय और क्या हो सकता है? आये दिन लोग पाप करते रहते हैं और उसका दण्ड भी पाते रहते हैं, लेकिन उससे पार होकर फिर पाप में प्रवृत्त हो जाते हैं। दूषित विचारधारा के कारण लोगों के सोचने, समझने का ढङ्ग भी अजीब हो जाता है। दण्ड पाने के बाद भी चोर सोचता है—क्या हुआ कुछ दिनों को कष्ट मिल गया—उससे हमारी क्या विशेष हानि हो गई? चलो फिर कहीं हाथ मारेंगे। यदि गहरा हाथ लग गया, तब तो कचहरी अदालत से निपट ही लेंगे, नहीं तो फँस गए तो फिर कुछ दिनों की काट आयेंगे। अपने काम के लाभ का त्याग क्यों किया जाय? जुआरी सोचता है यदि आज हार गये तो क्या हुआ, कल जीत कर मालामाल हो जायेंगे। हानि-लाभ तो व्यापार व्यवसाय में भी होता रहता है, उसका भी लाभ कब निश्चित है। जिस प्रकार पैसे का एक अन्धा खेल है, उसी प्रकार हमारा खेल भी पैसे का अन्धा खेल है। जीते तो पौबारह, नहीं तो कुछ घाटा ही सही।

इसी प्रकार कोई व्यभिचारी भी सोच सकता है। मैं जो कुछ करता हूँ, अपने लिये करता हूँ। उससे हानि होगी तो हमको ही होगी। पैसा हमारा जाता है, स्वास्थ्य हमारा बरबाद होता, रोगी होंगे तो हम होंगे, गृह-कलह हमारे घर पैदा होगा, इसमें समाज का क्या जाता है। न जाने हमारी व्यक्तिगत बातों की निन्दा करता हुआ, व्यर्थ में क्यों गाल बजाया करता है? यह सब सोचना क्या है? दूषित विचार-धारा का परिणाम है। समाज से अपने को पृथक मानकर चलना अथवा अपने व्यक्तिगत कर्मों का फल व्यक्तिगत मानना बुद्धि-हीनता के सिवाय और कुछ नहीं है। मनुष्य जो कुछ सोचता अथवा करता है, उसका सम्बन्ध किन्हीं दूसरों से अवश्य रहता है। यह बात भिन्न है कि

यह सम्बन्ध निकट का हो अथवा दूर का, प्रत्यक्ष हो अथवा परोक्ष । समाज से अपने को अथवा समाज को अपने से पृथक मानकर चलना दूषित विचार-धारा का प्रमाण है।

कुविचार के कारण प्रायः लोग यह नहीं समझ पाते कि अपकर्मों में जो तात्कालिक लाभ अथवा आनन्द दिखलाई देता है, वह भविष्य के बहुत से सुखों को नष्ट कर देता है। तात्कालिक लाभ के कारण लोग पाप के आकर्षण पर नियंत्रण नहीं रख पाते और उस ओर प्रेरित हो जाते हैं। सोच लेते हैं कि अभी जो आनन्द मिल रहा है, उसे तो ले ही लें, भविष्य में जो होगा देखा जायेगा। इस प्रकार से वर्तमान पर भविष्य को बलिदान करने वाले व्यक्ति बुद्धिमान नहीं माने जा सकते। बुद्धिमान् वही होता है, जो वर्तमान् आधार-शिला पर अपने भविष्य का राजमहल खड़ा करता है। ऐसे ही विचारहीन वर्तमान के लोभी अपने लिए और अपने साथ समाज के लिये कष्टकर परिस्थितियाँ पैदा किया करते हैं। यदि ऐसे लोगों की विचार-धारा में संशोधन करके समाजमुखी बनाया जा सके तो निष्पाप समाज की रचना बहुत कठिन न रह जाये।

मनुष्यों का कुमार्ग पर भटक जाने का एक कारण और भी है। सत्कर्मों का कोई तात्कालिक लाभ उतना शीघ्र नहीं मिलता, जितना शीघ्र असत्य अथवा बेईमानी आदि कुकर्मों का लाभ। फिर सत्कर्मों में कुछ त्याग भी पड़ता है, कुछ कष्ट भी। इस सरलता के धोखे में आकर लोग सन्मार्ग पर न चलकर कुमार्ग की ओर बढ़ जाते हैं। ऐसे लाभ के लोभी व्यक्तियों को सोचना चाहिये कि धीरज का फल मीठा भी होता है और देर तक आनन्द देने वाला भी। पहले कष्ट उठाकर पीछे सुख पाना अधिक आवश्यक है, बनिस्बत इसके कि पहले तो थोड़ा-सा मजा ले लिया जाय और फिर पीछे देर तक कष्ट भोग किया जाय। ऐसे लोभी लोग ही अविवेक के कारण मजा लेने के लिये तमाम चीजें खाते रहते हैं। वे स्वाद के कारण पथ्य, अपथ्य अथवा भक्ष्याभक्ष्य का विचार नहीं करते और चार दिनों के मजा के लिये महीनों बीमार होकर चारपाई पर पड़े-पड़े रोया करते हैं। ऐसे रोगियों और

अदूरदर्शी व्यक्तियों से समाज को कष्ट देने के सिवाय सुख की आशा किस प्रकार की जा सकती है ?

पवित्र विचार-धारा के लोग अपने कर्मों के दूरगामी और समाज सम्बन्धी हानि-लाभ पर विचार कर लेना अपना कर्तव्य समझते हैं। ऐसे पावन मनुष्य ही संसार में सुख-शांति की वृद्धि में सहायक सिद्ध होते हैं। जो जीवन का कोई महत्त्व समझते हैं, जिनके जीने का कोई उद्देश्य होता है और जिनके मन-मस्तिष्क में पृथकता की संकीर्णता नहीं होती, जो अन्तःकरण में परमात्मा के निवास का विश्वास रखते हैं, उनसे अपकर्म बन पड़ना सम्भव नहीं होता। उन्हें लोक-परलोक, जीवन-जन्म के बनने बिगड़ने का विचार रहता है।

ऐसे पवित्रात्मा-जन कष्टकर होने पर भी सत्कर्मों से विमुख नहीं होते। कुकर्मों द्वारा होने वाले बड़े-बड़े लाभों की उपेक्षा करके सत्कर्मों से होने वाले थोड़े लाभ में ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। उन्हें पुण्य-परमार्थ, ईश्वरीय न्याय और समतानुसार सत्कर्मों के मंगलमय परिणाम में विश्वास रहता है। उनका यह विश्वास ही उन्हें कुचक्रों के चक्रों से बचाकर भवसागर से पार उतार ले जाता है। इस पुण्य-पूर्ण विश्वास के अभाव में मनुष्य उसी प्रकार अवांछित दिशा में भटक जाता है, जिस प्रकार निराधार नाव कहीं से कहीं को चल देती है। जिसका मन मंगल भावनाओं से ओत-प्रोत नहीं, जिसका मस्तिष्क ठीक दिशा में सोचने का अभ्यस्त नहीं, उसे कुविचारों और कुभावनायें घेरेंगी ही और उनके फलस्वरूप वह कुकर्म करके अपने और समाज दोनों के लिये दुःख का कारण बनेगा ही। विचारों के आधार पर ही मनुष्य सुखी और दुःखी होता है इसलिये उन्हें ही समाज की अभिनव रचना और उसकी निरामयता का आधार मानकर चलना हमारा सबका परम कर्तव्य है।

निष्पाप समाज की रचना का आधार सद्विचार है, किन्तु सद्विचारों की रचना का उपाय क्या है, इसको जाने बिना समस्या का पूरा समाधान नहीं होता। सद्विचारों की रचना का उपाय अध्यात्मवाद को माना गया है। ऐसे अध्यात्मवाद को जिसका आधार परमार्थ और परहित हो। जो जितना पर-

परमार्थवादी होगा; वह उसी गहराई से कण-कण में उसी आत्मा का दर्शन करेगा, जिसका विश्वास उसके स्वयं के अस्तित्व में है। परमार्थी व्यक्ति अपने से भिन्न किसी को नहीं देखता और जिस प्रकार वह अपने को कष्ट देना पसन्द नहीं करता उसी प्रकार किसी दूसरे को कष्ट देने का विचार नहीं रखता। वह दूसरों की सेवा में, अपनी ही सेवा समझकर तत्पर रहता है। परसेवा और परोपकार के पथिक के पास असद्विचार उसी प्रकार नहीं आते जिस प्रकार विरागी व्यक्ति के पास माया-मोह नहीं आने पाते।

दया, करुणा और प्रेम परमार्थ प्रधान व्यक्ति के ऐसे गुण हैं, जिनको संसार का कोई प्रलोभन अथवा परिस्थिति उससे नहीं छीन सकती। परमार्थ प्रधान अध्यात्मवाद सद्विचारों की रचना का अमोघ उपाय है। इसी के आधार पर ऋषियों, मुनियों और मनीषी व्यक्तियों ने अमर आत्म-सुख का लाभ पाया और उसका प्रसाद संसार को बाँटकर अपना मानव-जीवन धन्य बनाया है।

सच्चा आध्यात्मिक व्यक्ति अखण्ड आस्तिक होता है। वह कण-कण में व्यापक प्रभु का दर्शन पाता और नमस्कार में अपनी विनम्रता व्यक्त करता रहता है। जिस व्यक्ति को सब ओर, सब जगह, भीतर-बाहर अपने में और दूसरे में परमात्मा की उपस्थिति का अविरल विश्वास बना रहेगा, उसके मन में कुविचारों का आना किस प्रकार सम्भव हो सकता है? वह तो सदा-सर्वदा ऐसे ही कर्म करने और भावनायें रखने का प्रयत्न करता रहेगा, जो उसके सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् प्रभु को पसन्द हों, जिनसे वह प्रसन्न हो सके।

परमात्मा की प्रसन्नता का सम्पादन करना ही सच्ची आस्तिकता और है। ईश्वर का अस्तित्व मानकर भी कुकर्म करने अथवा कुभाव रखने वाला यदि अपने को आस्तिक कहता है तो उसका यह कथन उपहास के सिवाय विश्वास का विषय नहीं बन सकता। ईश्वर में विश्वास रखकर भी जो व्यक्ति कुकर्म करता अथवा दुर्भावनायें रखता है, वह तो उस नास्तिक से भी गया गुजरा आस्तिक है, जो ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखता। ऐसे

आस्तिक समाज को सौ वर्ष की तपस्या के बाद भी क्षमा नहीं किया जा सकता।

संसार की वास्तविक सुख-शांति के लिये निष्पाप समाज की रचना का स्वप्न तभी साकार हो सकता है,जब आस्तिकतापूर्ण अध्यात्मवाद द्वारा विचारों का परिमार्जन कर नित्यप्रति होने वाले कुकर्मों पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाये। क्योंकि विचारों से कर्म और कर्मों से दुःख-सुख का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। इससे अन्यथा संसार में स्थायी और वास्तविक सुख-शांति का कोई उपाय दृष्टिगोचर नहीं होता।

सद्विचारों की समग्र साधना

सभी का प्रयत्न रहता है कि उनका जीवन सुखी और समृद्ध बने। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये लोग पुरुषार्थ करते, धन-सम्पत्ति कमाते, परिवार बसाते और आध्यात्मिक साधना करते हैं। किन्तु क्या पुरुषार्थ करने, धन-दौलत कमाने, परिवार बसाने और धर्म-कर्म करने मात्र से लोग सुख-शांति के अपने उद्देश्य में सफल हो जाते हैं। सम्भव है इस प्रकार प्रयत्न करने से कई लोग सुख-शांति की उपलब्धि कर लेते हों, किन्तु बहुतायत में तो यही दीखता है कि धन-सम्पत्ति और परिवार, परिजन के होते हुए भी लोग दुःखी और त्रस्त दीखते हैं। धर्म-कर्म करते हुए भी असन्तुष्ट और अशान्त हैं।

सुख-शान्ति की प्राप्ति के लिए धन-दौलत अथवा परिवार परिजन की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी आवश्यकता सद्विचारों की होती है। वास्तविक सुख-शान्ति पाने के लिये विचार साधना की ओर उन्मुख होना होगा। सुख-शान्ति न तो संसार की किसी वस्तु में है और न व्यक्ति में। उसका निवास मनुष्य के अन्तःकरण में है। जोकि विचार रूप से उसमें स्थित रहता है। सुख-शान्ति और कुछ नहीं, वस्तुतः मनुष्य के अपने विचारों की एक स्थिति है। जो व्यक्ति साधना द्वारा विचारों को उस स्थिति में रख सकता है, वही वास्तविक सुख-शांति का अधिकारी बन सकता है, अन्यथा, विचार साधना से रहित धन-दौलत से सिर मारते और मेरा-तेरा इसका-उसका करते हुए एक

झूठे सुख, मिथ्या शान्ति के मायाजाल में लोग यों ही भटकते हुए जीवन बिता रहे हैं और आगे भी बिताते रहेंगे।

वास्तविक सुख-शान्ति पाने के लिये विचारों की साधना करनी होगी। सामान्य लोगों की अपेक्षा दार्शनिक, विचारक, विद्वान्, सन्त और कलाकार लोग अधिक निर्धन और अभाव-ग्रस्त होते हैं तथापि उनकी अपेक्षा कहीं अधिक सन्तुष्ट, सुखी और शान्त देखे जाते हैं। इसका एक मात्र कारण यही है कि सामान्य जन सुख-शान्ति के लिये जहाँ लौकिक अथवा भौतिक साधना में निरत रहते हैं, वहाँ वे व्यक्ति विशेष मानसिक साधना अथवा वैचारिक साधना के अभ्यासी होते हैं। उपरोक्त व्यक्ति विशेषतः अपनी सफलता के लिये जिस साधना में लगे होते हैं, उसके लिये मनःशान्ति और बौद्धिक संतुलन की बहुत आवश्यकता होती है। वैभव और विभव उपार्जित करने की लिप्सा में वे लोग विचार-संतुलन का महत्त्व नहीं भूलते और निर्धनता के मूल्य पर भी मिलने वाले मानसिक संतुलन का त्याग नहीं करते। यही कारण है कि वे लोग अन्य सामान्यजनों की अपेक्षा अधिक शान्त और सन्तुष्ट दिखलाई देते हैं।

विचार साधना का सुफल विशेष लोगों के लिये ही अपवाद नहीं। उसका सुफल हर मनुष्य जनसाधारण भी पा सकता है, जो उचित रूप से विचार साधना में निरत होता है। भारत में जीवन विकास करने और स्थायी सुख-शान्ति पाने के लिये मन्त्र जाप पर बहुत बल दिया जाता था। आज भी आध्यात्मिक लोग पहले की ही तरह आत्म-शान्ति के लिये मन्त्रों का जाप तथा अनुष्ठान करते रहते हैं। यज्ञ, अनुष्ठान, जप तथा पूजा-पाठ और कुछ नहीं विचार साधना का ही एक प्रकार है। यज्ञ और जाप यद्यपि मानव जीवन का एक अनिवार्य नियम है, जिसका प्रायः लोग पालन करते हैं, जो लोग नहीं करते वे अपने एक मानवीय कर्तव्य से विमुख होते हैं, तथापि संकट और आपत्ति का शमन करने और उसके स्थान पर सुख-शान्ति की सामान्य स्थिति लाने के लिये लोग विशेष अनुष्ठानों का आयोजन करते हैं। यज्ञों और जापों के माध्यम से विचारों की साधना करते हैं।

वेद क्या है? कल्याणकारी मन्त्रों के भण्डार। मंत्र क्या है? श्रुति-

मुनियों के अनुभूत तथा परिपक्व विचारों का शब्दगत सार। यम और जाप, अनुष्ठान क्या हैं, उन्हीं आप्त पुरुषों के कल्याणकारी विचारों की साधना। यह विचार साधना का ही फल था कि प्राचीन आप्त पुरुष त्रिकालदर्शी और असाधारण सुख-शांति के अधिकारी होते थे। सुख-शांति के अन्य उपायों का निषेध न करते हुए भारतीय ऋषि मुनि अपने समाज को धर्म का अवलम्बन लेने के लिए विशेष निर्देशन किया करते थे। जनता की इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए उन्होंने जिन वेदों, पुराणों, शास्त्रों, उपनिषदों आदि धर्म-ग्रन्थों का प्रणयन किया है, उनमें मंत्रों, सर्कों, सूक्तियों द्वारा विचार साधना का ही पथ प्रशस्त किया है।

मन्त्रों का निरन्तर जाप करने से साधक के पुराने कुसंस्कार नष्ट होते हैं और उनका स्थान नये कल्याणकारी संस्कार लेने लगते हैं। संस्कारों के आधार पर अन्तःकरण का निर्माण होता है। अन्तःकरण के उच्च स्थिति में आते ही सुख-शान्ति के सारे कोष खुल जाते हैं। जीवन में जिनका प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है। मन्त्र वास्तव में अन्तःकरण को उच्च स्थिति में लाने के गुप्त मनोवैज्ञानिक प्रयोग हैं। वास्तव में न तो सुख-शान्ति का निवास किसी वस्तु अथवा व्यक्ति में है और न स्वयं ही उनकी कोई स्थिति है। वह मनुष्य के अपने विचारों की ही एक स्थिति है। सुख-दुःख उन्नति, अवनति का आधार मनुष्य की शुभ अथवा अशुभ मनःस्थिति ही है। जिसकी रचना तदनुरूप विचार साधना से ही होती है।

शुभ और इष्ट विचार मन में धारण करने से, उनका चिन्तन और मनन करते रहने से मनोदेश में सात्त्विक भाव की वृद्धि होती है। मनुष्य का आचरण उदात्त तथा उन्नत होता है। मानसिक शक्ति का विकास होता है, गुणों की प्राप्ति होती है। जिसका आचरण उन्नत है, जिसका मन दृढ़ और बलिष्ठ है, जिसमें गुणों का भण्डार भरा है, उसको सुख-शांति के अधिकार से संसार में कौन वंचित कर सकता है। भारतीय मंत्रों का अभिमत दाता होने का रहस्य यही है कि बार-बार जपने से उनमें निवास करने वाला दिव्य

विचारों का सार मनुष्य के अन्तःकरण में भर जाता है जो बीज की तरह वृद्धि पाकर मनोवांछित फल उत्पन्न कर देते हैं।

प्राचीन भारतीयों की आयु औसतन सौ वर्ष की होती थी। जो व्यक्ति संयोगवश सामान्य जीवन में सौ वर्ष से कम जीता था, उसे अल्पायु का दोषी माना जाता था, उसकी मृत्यु को अकाल मृत्यु कहा जाता था। इस शतायुष्य का रहस्य जहाँ उनका सात्विक तथा सौम्य रहन-सहन, आचार-विचार और आहार-विहार होता था, वहाँ सबसे बड़ा रहस्य उनकी तत्सम्बन्धी विचार साधना रहा है। वे वेदों में दिए—'प्रश्याम शरदः शतम्। अदीनस्याम शरदः शतम्'। जैसे अनेक मन्त्रों का जाप किया करते थे। यह मन्त्र जाप आयु सम्बन्धी विचार साधना के सिवाय और क्या होता था, गायत्री मन्त्र की साधना का भी यही रहस्य है।

इस महामंत्र का जाप करने वालों को बहुधा ही तेजस्वी, समृद्धिवान् तथा ज्ञानवान् क्यों देखा जाता है? इसीलिये कि इस मन्त्र के माध्यम से सविता देव की उपासना के साथ सुख, समृद्धि तथा ज्ञान पर विचारों की साधना की जाती है। मनुष्य जीवन में जो कुछ पाता या खोता है, उसका हेतु मान भले ही किन्हीं और कारणों को लिया जाये, किन्तु उसका वास्तविक कारण मनुष्य के अपने विचार ही होते हैं, जिन्हें धारण कर वह जान अथवा अनजान दशा में प्रत्यक्ष से लेकर गुप्त मन तक चिन्तन तथा मनन करता रहता है।

विचार साधना मानव-जीवन की सर्वश्रेष्ठ साधना है। इसके समान सरल तथा सद्य फलदायिनी साधना दूसरी नहीं है। मनुष्य जो कुछ पाना अथवा बनना चाहता है, उसके अनुरूप विचार धारण कर उनकी साधना करते रहने से वह अपने मन्तव्य में निश्चय ही सफल हो जाता है। यदि किसी में स्वावलम्बन की कमी है और वह स्वावलम्बी बनकर आत्म-निर्भरता की सुखद स्थिति पाना चाहता है तो उसे चाहिये कि वह तदनुरूप विचारों की साधना करने के लिये, इस प्रकार का चिन्तन तथा मनन करे, 'मुझे परमात्मा ने अनन्त शक्ति दी है, मुझे किसी दूसरे पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं है। परमुखापेक्षी रहना मानवीय व्यक्तित्व के अनुरूप नहीं। परावलम्बी होना

कोई विवशता नहीं है। यह तो मनुष्य की एक दुर्बल वृत्ति ही है। मैं अपनी इस दुर्बल वृत्ति का त्याग कर दूँगा और स्वयं अपने परिश्रम तथा उद्योग द्वारा अपने मनोरथ सफल करूँगा। परावलम्बी व्यक्ति पराधीन रहता है और पराधीन व्यक्ति संसार में कभी भी सुख और शान्ति नहीं पा सकता, मैं साधना द्वारा अपनी आन्तरिक शक्तियों का उद्घाटन करूँगा, शारीरिक शक्ति का उपयोग करूँगा और इस प्रकार स्वावलम्बी बनकर अपने लिये सुख-शांति की स्थिति स्वयं अर्जित करूँगा।" निश्चय ही इस प्रकार के अनुकूल विचारों की साधना से मनुष्य की परावलम्बन की दुर्बलता दूर होने लगेगी और उसके स्थान पर स्वावलम्बन का सुखदायी भाव बढ़ने और दृढ़ होने लगेगा।

मनोवैज्ञानिकों तथा चिकित्सा शास्त्रियों का कहना है कि आज रोगियों की बड़ी संख्या में ऐसे लोग बहुत कम होते हैं, जो वास्तव में किसी रोग से पीड़ित हों। अन्यथा बहुतायत ऐसे ही रोगियों की होती है, जो किसी न किसी काल्पनिक रोग के शिकार होते हैं। आरोग्य का विचारों से बहुत बड़ा सम्बन्ध होता है। जो व्यक्ति अपने प्रति रोगी होने, निर्बल और असमर्थ होने का भाव रखते और सोचते रहते हैं कि उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता। उन्हें आँख, नाक, कान, पेट, पीठ का कोई-न-कोई रोग लगा ही रहता है। बहुत कुछ उपाय करने पर भी वे पूरी तरह स्वस्थ नहीं रह पाते, ऐसे अशिव विचारों को धारण करने वाले वास्तव में कभी भी स्वस्थ नहीं रह पाते। यदि उनको कोई रोग नहीं भी होता है तो भी उनकी इस अशिव विचार साधना के फल-स्वरूप कोई न कोई रोग उत्पन्न हो जाता है और वे वास्तव में रोगी बन जाते हैं।

इसके विपरीत जो स्वास्थ्य सम्बन्धी सद्विचारों की साधना करते हैं, वे रोगी होने पर भी शीघ्र चंगे हो जाया करते हैं। जो रोगी इस प्रकार सोचने के अभ्यस्त होते हैं, वे एक बार उपचार के अभाव में भी स्वास्थ्य लाभ कर लेते हैं—"मेरा रोग साधारण है, मेरा उपचार ठीक-ठीक पर्याप्त ढंग से हो रहा है, दिन-दिन मेरा रोग घटता जाता है और मैं अपने अन्दर एक स्फूर्ति, चेतना और आरोग्य की लहर अनुभव करता हूँ। मैं पूरी तरह स्वस्थ हो

आने में अब ज्यादा देर नहीं है।" इसी प्रकार जो निरोग व्यक्ति भूल कर भी रोगों की शंका नहीं करता और अपने स्वास्थ्य से प्रसन्न रहता है। जो कुछ खाने को मिलता है, खाता और ईश्वर को धन्यवाद देता है, वह न केवल आजीवन निरोगी ही रहता है, बल्कि दिन-दिन उसकी शक्ति और सामर्थ्य भी बढ़ती जाती है।

जीवन की उन्नति और विकास के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। जो व्यक्ति दिन रात यही सोचता रहता है कि उसके पास साधनों का अभाव है। उसकी शक्ति सामर्थ्य और योग्यता कम है, उसे अपने पर विश्वास नहीं है। संसार में उसका साथ देने वाला कोई नहीं है। विपरीत परिस्थितियाँ सर्वत्र ही उसे घेरे रहती हैं। वह निराशावादी व्यक्ति जीवन में जरा भी उन्नति नहीं कर सकता, फिर चाहे उसे कुबेर का कोष ही क्यों न दे दिया जाय और संसार के सारे अवसर ही क्यों न उसके लिये सुरक्षित कर दिये जायें।

इसके विपरीत जो आत्म-विश्वास, उत्साह, साहस और पुरुषार्थ भावना से भरे विचार रखता है। सोचता है कि उसकी शक्ति सब कुछ कर सकने में समर्थ है। उसकी योग्यता इस योग्य है कि वह अपने लायक हर काम कर सकता है। उसमें परिश्रम और पुरुषार्थ के प्रति लगन है। उसे संसार में किसी की सहायता के लिये बैठे नहीं रहना है। वह स्वयं ही अपना मार्ग बनायेगा और स्वयं ही अपने आधार पर उस पर अग्रसर होगा—ऐसा आत्म-विश्वासी और आशावादी व्यक्ति अभाव और प्रतिकूलताओं में भी आगे बढ़ जाता है।

सुख-शांति का अपना कोई अस्तित्व नहीं। यह मनुष्य के विचारों की ही एक स्थिति होती है। यदि अपने अन्तः करण में उल्लास, उत्साह, प्रसन्नता एवं आनन्द अनुभव करने की वृत्ति जगा ली जाय और दुःख, कष्ट और अभाव की अनुभूति की हठात् उपेक्षा की जाय तो कोई कारण नहीं कि मनुष्य सुख-शांति के लिए लालायित बना रहे। मैं आनन्द रूप परमात्मा का अंश हूँ, मेरा सच्चा स्वरूप आनन्दमय ही है, मेरी आत्मा में आनन्द के कोष भरे

हैं, मुझे संसार की किसी वस्तु का आनन्द अपेक्षित नहीं है। जो आनन्दरूप, आनन्दमय और आनन्द का उद्‌गम आत्मा है, उससे दुःख, शोक अथवा ताप-संताप का क्या सम्बन्ध ? किन्तु यह सम्भव तभी है, जब तदनुरूप विचारों की साधना में निरत रहा जाय।

इच्छा–शक्ति के चमत्कार

मनुष्य की आंतरिक शक्तियों में इच्छा-शक्ति का बड़ा महत्व है। यही वह शक्ति है जो मनुष्य में नव-जीवन और नवीन स्फूर्ति का संचार करती है। जीवन की समग्र क्रियात्मकता इसी शक्ति पर निर्भर है। इच्छा-शक्ति की प्रेरणा से ही मनुष्य अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य में जुटा रहता है। इच्छा का लगाव जिस विषय से हो जाता है, मनुष्य की सारी शक्तियाँ उसी ओर को झुक जाती हैं। इच्छा की तीव्रता विपरीतता में भी अपना मार्ग निकाल लेती है।

जिस समय मनुष्य की इच्छायें मर चुकी हों, समझना चाहिए कि वह मर चुका है। श्वांस लेते हुए एक शव के समान ही वह सारे कार्य किया करता है। नष्ट मनुष्य की जिन्दगी में कोई आकर्षण शेष नहीं रहता, कोई रुचि नहीं रहती। अरुचि पूर्ण जीवन का अभिशाप नरक से भी अधिक कष्ट-दायक होता है। इच्छायें ही जीवन को गति देती हैं, संघर्ष की शक्ति और परिश्रम की प्रेरणा प्रदान करती हैं।

किसी वस्तु की प्राप्ति की लालसा को इच्छा कहते हैं। इस लालसा की तीव्रता को इच्छा शक्ति कहते हैं। किसी वस्तु के अभाव में जो एक वेदना-पूर्ण अनुभूति होती है वही इच्छा की तीव्रता है, जिसकी न्यूनाधिकता के अनुपात से ही इच्छा में शक्ति का सम्पादन होता है।

मनुष्यों की इच्छा अनेकों प्रकार की हो सकती हैं। वे अच्छी और बुरी दोनों प्रकार की हो सकती हैं। मनुष्य की इच्छायें उसकी आन्तरिक अवस्था की द्योतक हैं। जिस मनुष्य की इच्छायें स्वार्थ पूर्ण हैं वह अच्छा आदमी नहीं। उसकी इच्छाओं में सात्विक शक्ति नहीं होती, जिसके बल पर बड़ी-से-बड़ी उपलब्धि प्राप्त की जा सकती है।

अन्याय एवं अनीति पूर्ण इच्छायें रखने वाला भले ही किसी संयोग, युक्ति अथवा परिस्थितियों का लाभ उठाकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर ले, तब भी यह न मानना चाहिए कि इसने इच्छा-शक्ति के बल पर अपनी वांछा को पूर्ण कर लिया है या यों कहना चाहिए कि यह उसकी इच्छा-शक्ति की तीव्रता है, जिससे वह अपने लक्ष्य में सफल हो सका है। सफल होने के लिए अनीति पूर्ण योजनायें भी सफल होती रही हैं। इतिहास में ऐसे अनेकों अत्याचारियों, अन्यायियों एवं बर्बरों के उदाहरण पाये जाते हैं, जिन्होंने अपनी अन्याय पूर्ण इच्छाओं को पूरा कर लिया है, साम्राज्य स्थापित किये हैं, विजय प्राप्त की हैं।

कहा जा सकता है कि यह उन अत्याचारियों की इच्छा-शक्ति का परिणाम है कि वे ऐसी-ऐसी विकट विजयों को प्राप्त कर सके हैं। किन्तु यदि वास्तव में तात्विक दृष्टि से देखा जाये तो पता चलेगा कि वे विजयें अत्याचारियों की तीव्र इच्छा-शक्ति का फल नहीं था, बल्कि विजितों की निर्बल इच्छा-शक्ति का परिणाम था। जब किसी एक वर्ग की विजयेच्छा नष्ट हो जाती है तभी आक्रामक की, अनीति पूर्ण होने पर भी विजय-वांछा पूर्ण हो जाती है।

अन्यायी की इच्छाओं में स्वयं अपनी कोई इच्छा नहीं होती, वे वास्तव में अहङ्कार द्वारा ही प्रेरित हैं। यदि अन्यायी के अहङ्कार का हरण कर लिया जाये, उसे ध्वस्त कर दिया जाये तो वह विश्व का सबसे निर्बल और निरीह प्राणी हो जाता है। यही कारण है कि अहङ्कार का उन्माद उतरते ही उसकी सारी शक्तियाँ ठीक उसी प्रकार समाप्त हो जाती हैं, जिस प्रकार नशे की उत्तेजना उतरते ही कोई मद्यप मुर्दे की तरह निर्जीव हो जाता है। उसका सारा जोश-खरोश वेग-आवेग आदि आन्दोलन पूर्ण क्रियायें खत्म हो जाती हैं और वह एक एक साधारण-से-साधारण व्यक्ति के हाथ कुत्ते की मौत मारा जाता है।

अनीति पूर्ण इच्छाओं में कोई स्थायित्व नहीं होता। वे बरसाती नदी की भाँति उफनती हैं और शीघ्र ही ठण्डी पड़ जाती हैं। अन्यायी इच्छाओं से

अभिभूत होता है। उनसे उत्तेजित होता है, उसे पूरी करने के लिये व्याकुल रहता है और उनके वेग में एक शक्ति भी अनुभव करता है। किन्तु फिर भी अहङ्कार का लाख आवरण डालने पर भी वह इस विचार से मुक्त नहीं हो पाता कि उसकी इच्छायें अनुचित हैं। वह स्वयं अपनी दृष्टि में अपराधी बना रहता है और बाहर अन्यों से भी भयभीत रहता है। यही कारण है कि उसकी इच्छाओं में न तो कोई शक्ति रहती है और न वे जीवन-लक्ष्य बनकर स्थायित्व प्राप्त कर पाती हैं। प्रतिकूल परिस्थिति आने पर वह इच्छाओं को छोड़ देता है, उनमें परिवर्तन कर लेता है और कभी-कभी तो उनकी भयङ्करता से वह जीवन के रणक्षेत्र से ही भाग खड़ा होता है। अत्याचारी अथवा अन्यायी की सफलता वस्तुतः उसकी इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती बल्कि उसके उस अहङ्कार की ही परिपुष्टि होती है, जिसके आवेश से वह त्रस्त, दुःखी एवं विकल रहता है।

सदिच्छुक का कर्तव्य बुद्धि के तर्क, विवेक की भर्त्सना अथवा आत्मा के धिक्कार से प्रभावित नहीं होता बल्कि उनका सहयोग पाकर उसकी इच्छायें और भी अधिक बलवती एवं सुनिश्चित हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त आत्म-कल्याण और परोपकार की भावना के कारण वह दिनों दिन सदाचारी, सच्चरित्र एवं सत्यमूर्ति बनकर दूसरों की सद्भावना सहयोग तथा सहायता प्राप्त करता हुआ अधिकाधिक शक्ति-सम्पन्न होता जाता है। सदिच्छायें स्वयं शक्तिमती होने के साथ-साथ दूसरों से भी शक्ति संचय करती रहती हैं।

विरोध करना लोगों का आज स्वभाव बन गया है। यहाँ पर क्या अच्छे कार्य और क्या बुरे, विरोध सबका ही किया जाता है, बल्कि वास्तव में यदि देखा जाये तो पता चलेगा कि बुराई से अधिक भलाई को विरोध का सामना करना पड़ता है। इसका कारण यह नहीं है कि भलाई भी बुराई की तरह ही विरोध की पात्र है, बल्कि समाज की दुष्प्रवृत्तियाँ अपने अस्तित्व के प्रति खतरा देखकर भड़क उठती हैं और विरोध के रूप में सामने आ जाती हैं। चूँकि सत्प्रवृत्तियाँ विरोध-भाव से शून्य होती हैं इसलिए वे बुराई का विरोध करने से पूर्व सुधार का प्रयत्न करती हैं। ध्वंसात्मक न होने के कारण

वे बुराई के विरोध को भयंकरता के रूप में उपस्थित नहीं करतीं, जिससे ऐसा नहीं दीखता कि बुराई का विरोध हो रहा है। दुष्प्रवृत्तियों के उफान को, किसी ध्वंसात्मक संघर्ष को बचाने के लिये सत्प्रवृत्तियाँ किसी सीमा तक उनकी उपेक्षा करती हुई यह प्रतीक्षा किया करती हैं, कदाचित् वह स्वयं सुधर जाये। किन्तु जब ऐसा नहीं होता तो सत्प्रवृत्तियाँ अपने ढङ्ग से आगे बढ़ती हैं और बुराई को दूर करने का प्रयत्न करती हैं। ध्वंसात्मक होने के कारण दुष्प्रवृत्तियाँ सत्प्रवृत्तियों के विरोध में एक संघर्ष खड़ा कर देती हैं, जिससे सत्प्रवृत्तियों को अधिक विरोध दृष्टिगोचर होता है। इसके विपरीत सत्प्रवृत्तियों द्वारा संघर्ष के स्थान पर सुधार का प्रयत्न करने के कारण बुराई का विरोध होते नहीं दीखता, जबकि सत्प्रवृत्तियों का विरोध अधिक फलदायक तथा स्थायी होता है।

जहाँ तक इच्छाओं का सम्बन्ध है, सदिच्छायें ही इच्छाओं की सीमा में आती हैं इसके विपरीत जो असत्-इच्छायें हैं वे वास्तव में इच्छायें न होकर दुष्प्रवृत्तियों का आवेग ही हैं। सदिच्छायें ही अपरिमित हैं। कोई अच्छा कार्य करने अथवा उदात्त लक्ष्य प्राप्त करने की कामना रखने वाला लाख विरोधों एवं असुविधाओं के होने पर भी अपने ध्येय पर पहुँच ही जाता है।

सदाशयी में एक स्थायी लगन होती है, जिससे वह अपने ध्येय के प्रति निछावर होकर अपनी समग्र शक्तियों को लगाकर प्रयत्न में लगा रहता है। इच्छा एवं प्रयत्न की एकता उसमें एक अलौकिक सहायता-स्रोत का उद्घाटन कर देती है, जिससे उसके प्रयत्नों में निरन्तरता, तीव्रता और अमोघता बढ़ती जाती है और वह क्षण-क्षण ध्येय की ओर उत्तरोत्तर अग्रसर होता जाता है।

सदिच्छावान् व्यक्ति में आशा, उत्साह, साहस और सक्रियता की कमी नहीं रहती और जिसमें इन सफलता वाहक गुणों का समावेश होगा, असफलता उसके पास आ ही नहीं सकती। असद् इच्छायें जहाँ अपने विध्वंसे प्रभाव से मनुष्य की शक्ति का नाश करती हैं, वहाँ सद् इच्छायें उनमें नवीन स्फूर्ति, नया उत्साह और अभिनव आशा का संचार किया करती हैं।

एक इच्छा, एक निष्ठा और शक्तियों की एकता मनुष्य को उसके अभीष्ट लक्ष्य तक अवश्य पहुंचा देती है । इसमें किसी प्रकार के सन्देह की गुन्जाइश नहीं।

अपनी शक्तियां सही दिशा में विकसित कीजिये

विश्वासी मनुष्य विश्व-विजय कर सकता है—इसमें सन्देह नहीं । जिसको अपने पर, अपने चरित्र पर, अपनी शक्तियों पर, अपनी आत्मा और परमात्मा पर विश्वास है, वह मरुभूमि को मालवा बना सकता है। मनुष्य से देवता और नगण्य से गण्यमान् बन सकता है। असंदिग्ध विश्वास वाले व्यक्ति के लिये न कहीं भय है और न अभाव। वह किसी स्थान में रहे, किसी परिस्थिति में पड़ जाये सफल होकर ही बाहर आता है।

इसका साधारण-सा सार यह है कि जिसको अपने पर और अपनी शक्तियों में अडिग विश्वास है, उसका साहस एवं उत्साह हर समय चैतन्य बना रहता है। आशा उसकी अगवानी के लिये पथ में प्रस्तुत खड़ी रहती है। आशा, विश्वास, साहस और उत्साह का चतुष्टय जिस भाग्यवान् के पास है, वह किसी भी कार्य-क्षेत्र में कूद पड़ने से कब हिचक सकता है ? जो कर्मक्षेत्र में उतरेगा पुरुषार्थ एवं परिश्रम करेगा—उसका फल उसे मिलेगा ही। जो समुद्र में पैठेगा मणि-मुक्ता पायेगा ही। जो पर्वत पर चढ़ेगा वही तो चन्दन उपलब्ध करेगा। यह तो एक साधारण नियम है। इसमें कोई आश्चर्य एवं विचित्रता नहीं है।

यह सब होते हुए भी संसार में अधिकतर मनुष्य ऐसे ही दीख पड़ते हैं, जो दीन-हीन अवस्था में पड़े जीवन को आगे ठेल रहे हैं। न उनमें कोई उत्साह दृष्टिगोचर होता है और न कर्त्तव्य की कोई साधना। यदि काम करना पड़ा तो उल्टा-सीधा कर फेंका। जो कुछ उल्टा-सीधा खाने को मिला पेट में डाला और बस पड़ रहे असहायों जैसे समय और जीवन की हत्या करने के लिये।

बड़ा आश्चर्य होता है—कि ऐसे आदमियों को यह समझ में क्यों नहीं आता कि उनका यही जीवन-यापन, मृत्यु-यापन का ही एक स्वरूप है। केवल हाथ पैरों का हिल-डुल सकना और श्वासों का आवागमन ही जीवन का प्रमाण नहीं है। यह तो केवल मिट्टी और आदमी के बीच अन्तर का सूचक है। जीवन का चिह्न तो मनुष्य की प्रगति एवं विकास है। उसके वे कर्त्तव्य हैं जो अपना और दूसरों का कुछ भला कर सकें। जीवन का लक्षण मनुष्य की वे भावनायें एवं विचार हैं जिनमें कुछ ताजगी, कुछ प्रेरणा और स्फूर्ति हो। जिसके मस्तिष्क से प्रेरक विचार और उद्बोधक भावनाओं का स्फुरण नहीं होता, जीवित कैसा ? वह तो जड़ अथवा जड़ीभूत प्राणी ही माना जायेगा।

कर्त्तव्य का अर्थ कमाई कर लेना और जीवन-यापन का मतलब खाना-पीना, सोना जागना, बोलना-चालना, घूमना-फिरना मानने वाले भूल करते हैं। यह सारी क्रियायें तो नैसर्गिक कार्य-कलाप हैं, जिन्हें जीवन को बनाये रखने के लिए विवश होकर करना ही पड़ता है। यदि मनुष्य इन क्रियाओं से विमुख होकर इन्हें स्थगित कर दे तो उसका जीवन ही न रहे, फिर उसके यापन का प्रश्न ही नहीं उठता। यापन का अर्थ है उपयोग करना। जीवन को बचाने के लिये, उपार्जन आदि के कार्य जीवन के उपयोग में सम्मिलित नहीं किये जा सकते। यह तो खाने-पीने के लिए जीना और जीने के लिये खाना-पीना जैसा एक चक्रात्मक क्रम हो गया, जिसमें जीवन की उपयोगिता जैसा अंश कहाँ है।

जीवन-यापन अथवा उसकी उपयोगिता का अर्थ यह है कि जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त कुछ ऐसे काम किये जायें, जो परमार्थ परक हों। अर्थात् जो अपनी आत्मा और परमात्मा की इस सृष्टि के लिए कुछ उपयोगी हो सकें। जिनको करने से संसार में कुछ सौन्दर्य-वर्धन हो, दीन-हीन और रोगी, दोषी व्यक्तियों की संख्या कम हो, अभाव एवं अशिक्षा का अंश यथासि दूर हो, सहचर्य, सौहार्द्य एवं सद्भावना का वातावरण बढ़े, प्रेम एवं पुण्य की परम्परायें विकसित हों, आस्था एवं आस्तिकता में गम्भीरता का

समावेश हो, अज्ञान एवं अभिज्ञता के अन्धकार में ज्ञान एवं मैत्री के दीप जलें, विरोध एवं संघर्ष के स्थान पर सामंजस्य और सहकारिता की स्थापना हो— आदि अनेक ऐसे सत्कर्म एवं सद्विचार हो सकते हैं जिनके प्रसार एवं प्रकाश से हमारा संसार स्वर्गोपम स्थिति की ओर अग्रसर हो सकता है।

यदि हमारे जीवन का थोड़ा सा भी अंश इस स्वर्गीय उद्देश्य के लिये नहीं लगता और खाने, कमाने, भागने और बचाने में ही लग जाता है तो मानना पड़ेगा कि हमने जीवन-यापन नहीं किया उसका विनाश किया है, हत्या की है और हम समाज का बहुत कुछ चुराकर उसको संचित करके आत्म-घात के अपराधी हुए हैं। यह मनुष्यता के लिए कलंक एवं लज्जा की बात है। इतना एकाकी, एकांगी और निजत्वपूर्ण जीवन तो कीट-पतङ्ग एवं पशु-पक्षी भी नहीं बिताते। वे भी अपने अतिरिक्त दूसरों का कुछ करते दिखाई देते हैं।

लोग धन कमाते, उसे खाते, व्यय करते और बचाकर रख लेते हैं। विद्या प्राप्त करते—उसे अर्थकारी बनाकर अपने तक सीमित कर लेते, लोग शक्ति संचय करते—उससे या तो दूसरों पर प्रभाव का आनन्द लेते अथवा अपने को बलवान् समझकर संतुष्ट हो जाते, कला-कौशल का विकास करते और उसके पैसे खड़े कर लेते, शिल्प सीखते उनमें मौलिकता की वृद्धि करते और उसके आधार पर मालामाल होने के मन्सूबे बनाते, लोग आध्यात्मिक उन्नति करते और अपने में लीन हो जाते हैं। अनेक विषयों पर एवं समस्याओं पर विचार करते और स्वयं समाधान समझकर चुप हो जाते हैं। यह और इस प्रकार की सारी बातें घोर स्वार्थपरता है। अपने स्वार्थ तक अपनी उन्नति एवं विकास को सीमित कर लेना अथवा उन्नति एवं विकास न करना एक ही बात है। कोई भी गुण, कोई भी विशेषता, कोई भी कला अथवा कोई भी उपलब्धि जो संसार एवं समाज के काम नहीं आती व्यर्थ एवं निरर्थक है। अस्तु, इस परिश्रम एवं पुरुषार्थ की निरर्थकता से बचने के लिये अपने से बाहर निकल कर विशेषताओं एवं उपलब्धियों का प्रसारण कीजिये और तब देखिये कि आपको उस स्थिति से शत सहस्र गुना सुख सन्तोष मिलता और लोक के साथ परलोक का भी सुधार होता है।

आपने प्रयत्न किया और परमात्मा ने आपको धन दिया। बड़े हर्ष का विषय, प्रसन्नता की बात है, आप बधाई के पात्र हैं। किन्तु इसको सार्थक बनाने के लिये, आपके व्यय से जो कुछ बचे उसमें से कुछ भाग से समाज का भला कीजिये। न जाने कितने जरूरतमन्द अपनी जिन्दगी, जो कि उपयोगी हो सकती है, इसके अभाव में नष्ट कर रहे हैं। न जाने कितने होनहार निर्धन विद्यार्थियों की शिक्षा इसके अभाव में बन्द हो जाती है। न जाने कितने समाज-सेवी और सत्पुरुष आर्थिक असुविधा से हाथ-पैर बाँधे यथास्थान तड़पते रहते हैं। न जाने कितनी भूखी आत्मायें अकाल में ही शरीर त्याग देती हैं। न जाने कितने अनाथ एवं अपाहिज बच्चे याचना भरी आँखों से टुकुर-टुकुर देखा करते हैं। अपने धन का उपयोग इनकी सहायता करने में करिये। इससे आपको यश एवं पुण्य का लाभ तो होगा ही साथ ही आपका वह समय जिसे आवश्यकता से अधिक धन कमाने में लगाया था अब जीवन-यापन अथवा उपभोग में मिला जायेगा।

इसी प्रकार यदि आप विद्वान्, कुशल शिल्पी, विचारक, बलवान् आदि किन्हीं भी विशेषताओं से विभूषित क्यों न हों, उससे समाज को प्रभावित करने और लाभ उठाने के स्थान पर उसकी सेवा, सहायता एवं सान्त्वना कीजिये आपके गुण, आपकी विशेषतायें अपनी संज्ञा से आगे बढ़कर पुण्य एवं परमार्थ की उपाधि प्राप्त कर लेंगी।

यदि आपके पास धन-दौलत व गुण विशेषतायें कुछ भी नहीं हैं। आप सन्तानवान् हैं तो अपनी सभी सन्तानों को अपने तक अथवा उनके अपने जीवन तक ही सीमित न कर दीजिये, कम-से-कम एक सन्तान को अवश्य ही समाज-सेवा, लोक-हित के लिये प्रेरित कीजिये। यह आवश्यक नहीं कि वह साधु-सन्यासी अथवा नेता-नायक बनकर ही समाज-सेवा कर सके या जाने बढ़े। वह साधारण नागरिक और गृहस्थ रहकर भी लोक-हित के काम कर सकता है। आपका केवल यह कर्त्तव्य है कि आप उसका निर्माण इस प्रकार से करें कि उसकी प्रवृत्तियाँ स्वार्थी न होकर परमार्थोन्मुखी हो जायें।

यदि दीनता यहाँ तक हो कि किसी के पास उसके शरीर के अतिरिक्त

और कुछ नहीं है तो वह और कुछ न सही समाज को समय देकर उसकी शारीरिक सेवा करके पुण्यवान् बन सकता है। तात्पर्य यह कि लोक-हित के कार्यों के लिये मात्रा अथवा परिमाण का कोई महत्व नहीं है। महत्त्व है उस प्रकार की भावना और यथासाध्य तदनुरूप सक्रियता का। यहां तक कि यह सेवा मानसिक, बौद्धिक और वाचिक भी हो सकती है, वैचारिक और भावनात्मक हो सकती है। अपनी संकुचित सीमा से निकलकर अपने सामाजिक स्वरूप को जानना और उसके दुःख-सुख और उत्थान-पतन से समभाग होना ही इसका आधार-भूत सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त में विश्वास रखने वालों से लोक-हित के थोड़े-बहुत कार्य अनायास ही होते रहते हैं।

आइये, हम सब अपने प्रति विश्वास का महामन्त्र सिद्ध करें और जीवन के उन्नत सोपानों पर चढ़ चलें। हम जितनी उन्नति कर सकेंगे उतना अपना और समाज का हित कर सकेंगे। यदि हम गई-गुजरी और आश्रित अवस्था में अपने को डाले रहे, परमुखापेक्षी बने रहे तो स्वयं कुछ भी परमार्थ न कर दूसरों को अपने द्वारा परमार्थ का अवसर देने पर बाध्य होंगे और इस प्रकार अपने स्वयं के जीवन की सार्थकता एवं उपयोगिता से वंचित रह जायेंगे।

यह सोचना और यह कहना कि हम किसी योग्य ही नहीं हैं, हमारे पास है ही क्या जिससे हम उन्नति कर सकते हैं और दूसरों का हित सम्पादित कर सकते हैं। यह भावना निराशात्मक है। इसको अपने मस्तिष्क से निकाल फेंकिये। आपमें उत्साह, साहस और स्फूर्ति के भण्डार भरे पड़े हैं। अपने पर विश्वास तो कीजिये। आस्थापूर्वक आगे कदम बढ़ाइये फिर देखिये कि आपका मार्ग आप से आप स्पष्ट होता जायेगा।

हो सकता है आपमें विश्वास की कमी हो। उमङ्ग आने पर भी आपका कदम न बढ़ता हो। बढ़ा हुआ कदम किसी भय से अथवा आशंका से ठिठक जाता हो और आप इस बात से दुःखी हों कि आपका आदि ही आरम्भ नहीं हो पा रहा है। तब भी दुःखी अथवा निराश होने का आवश्यकता नहीं।

अपने को देखिये, अपनी परीक्षा कीजिये । अवश्य ही कोई न कोई कमजोरी अथवा कमी आपको भयभीत बनाये हुये है ।

यदि आपमें शिक्षा की कमी है तो आज ही पढ़ना प्रारम्भ कर दीजिये । पढ़ने के लिये कोई भी समय-असमय नहीं होता । सबको सब समय विद्या लाभ हो सकता है, यदि वह उसके लिये जिज्ञासापूर्वक प्रयत्न करता है । साक्षर बनिये और सत्साहित्य का अध्ययन कीजिए, सत्साहित्य का अध्ययन मनुष्य के विचार कोष अनायास ही खोल देता है, प्रकाश एवं प्रेरणा देता है । नई-नई योजनायें और क्रियाओं की प्रेरणा देता और मनुष्य में आत्म-विश्वास की वृद्धि करता है । शिक्षा की कमी दूर होने से मनुष्य की अनेक अन्य कमियाँ स्वयं दूर हो जाया करती हैं । अविश्वास, सन्देह, शंका और संशय के कुहासे को विद्या की एक किरण बात की बात में विलीन कर देती है ।

यदि आप में चारित्रिक दुर्बलता है तो चरित्रवानों का संग कीजिए । सज्जनों का सत्संग और उनका जीवन देखने अध्ययन करने से यह दुर्बलता भी शीघ्र ही दूर हो जाती है । यदि आपके संकल्प शुद्ध हैं, उद्देश्य उन्नत एवं हितकारी हैं, यदि आप लोक-मङ्गल की भावना से प्रेरित हैं तो चारित्रिक दुर्बलता के प्रति निराशा अथवा आत्महीन होने की आवश्यकता नहीं । चरित्र का सुन्दर एवं शिव स्वरूप न देख सकने के कारण ही मनुष्य अन्धकार की भाँति भटक जाता है । जब आप सत्साहित्य और सत्सङ्ग द्वारा चरित्र का उज्ज्वल पक्ष देख लेंगे, आपकी सारी विकृतियाँ लजाकर तिरोहित हो जायेंगी और तब आप दर्पण की तरह प्रसन्न होकर पुलकित हो उठेंगे ।

इस प्रकार अपनी कमियाँ एवं कमजोरियों को निकाल फेंकिए आपमें आत्म-विश्वास की वृद्धि होगी, जिसके साथ ही साहस, उत्साह और आशा की त्रिधारा भी आपके अन्दर लहराने लगेगी । अपने शिव संकल्पों और लोक-कल्याण की भावना के साथ अपने इस विश्वास, साहस को नियोजित कीजिये और वह सब कुछ बनकर सब कुछ कर दिखाइये, जो पुण्य एवं पुरुषार्थ, उन्नति एवं विकास के पथ में पुकारा जाता है ।

सद् विचार सत अध्ययन से जन्मते हैं

समाज में फैली हुई अन्धता, मूढ़ता तथा कुरीतियों का कारण अज्ञान में अंधकार जैसा ही दोष होता है। अन्धकार में भ्रम होना स्वाभाविक ही है। जिस प्रकार अंधेरे में वस्तु स्थिति का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं हो पाता—पास रखी हुई चीज का स्वरूप यथावत् दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार अज्ञान के दोष से स्थिति, विषय आदि का ठीक आभास नहीं होता। वस्तु स्थिति के ठीक ज्ञान के अभाव में कुछ-का-कुछ सूझने और होने लगता है। विचार और उनसे प्रेरित कार्यों के गलत हो जाने पर मनुष्य का विपत्ति, संकट अथवा भ्रम में पड़कर अपनी हानि कर लेना स्वाभाविक ही है।

अंधकार के समान अज्ञान में भी एक अनजाना भय समाया रहता है। रात के अंधकार में रास्ता चलने वालों को दूर के पेड़-पौधे, ठूंठ, स्तूप तथा मील के पत्थर तक चोर, डाकू, भूत-प्रेत आदि से दिखाई देने लगते हैं। अन्धकार में जब भी जो चीज दिखाई देगी वह शंकात्मक ही होगी, विश्वास अथवा उत्साहजनक नहीं। घर में रात के समय में पेशाब, शौच आदि के लिये आने-जाने वाले अपने माता-पिता, बेटे-बेटियाँ तक अन्धकाराच्छन्न होने के कारण चोर, डाकू या भूत, चुड़ैल जैसे भान होने लगते हैं और कई बार तो लोग उनको पहचान न सकने के कारण टोक उठते हैं या भय से चीख मार बैठते हैं। यद्यपि उनके वे स्वजन पता चलने पर न भूत-चुड़ैल अथवा चोर-डाकू निकले और न पहचान से पूर्व ही थे किन्तु अन्धकार के दोष से वे भय एवं शङ्का के विषय बने। भय का निवास वास्तव में न तो अन्धकार में होता है और न वस्तु में, उसका निवास होता है उस अज्ञान में जो अंधेरे के कारण वस्तु स्थिति का ज्ञान नहीं होने देता।

ज्ञान के अभाव में असाधारण भ्रांतिपूर्ण एवं निराधार बातों को उसी प्रकार समझ लेता है जिस प्रकार हिरन मृग-मरीचिका में जल का विश्वास कर लेता है और निरर्थक ही उसके पीछे दौड़-दौड़कर जान तक गँवा देता है। अज्ञान का परिणाम बड़ा ही अनर्थकारी होता है। अज्ञान के कारण ही

समाज में अनेकों अन्ध-विश्वास फैल जाते हैं। स्वार्थी लोग किसी अन्ध-परम्परा को चलाकर जनता में यह भय उत्पन्न कर देते हैं कि यदि वे उक्त परम्परा अथवा प्रथा को नहीं मानेंगे तो उन्हें पाप लगेगा जिसके फलस्वरूप उन्हें लोक में अनर्थ और परलोक में दुर्गति का भागी बनना पड़ेगा। अज्ञानी लोग 'भय से प्रीति' होने के सिद्धान्तानुसार उक्त प्रथा-परम्परा में विश्वास एवं आस्था करने लगते हैं और तब उसकी हानि देखते हुए भी अज्ञान एवं आशंका के कारण उसे छोड़ने को तैयार नहीं होते। मनुष्य आँखों देखी हानि अथवा सङ्कट से उतना नहीं डरते जितना कि अनागत आशङ्का से। अज्ञानजन्य भ्रम जञ्जाल में फँसे हुए मनुष्य का दीन-दुःखी रहना स्वाभाविक ही है।

यही कारण है कि ऋषियों ने "तमसो मा ज्योतिर्गमय" का सन्देश देते हुए मनुष्यों को अज्ञान की यातना से निकलने के लिये ज्ञान-प्राप्ति का पुरुषार्थ करने के लिये कहा है। भारत का आध्यात्म-दर्शन ज्ञान-प्राप्ति के उपायों का प्रतिपादक है। अज्ञानी व्यक्ति को शास्त्रकारों ने अन्धे की उपमा दी है। जिस प्रकार बाह्य-नेत्रों के नष्ट हो जाने से मनुष्य भौतिक जगत का स्वरूप जानने में असमर्थ रहता है उसी प्रकार ज्ञान के अभाव में बौद्धिक अथवा विचार-जगत की निर्भ्रान्त जानकारी नहीं हो पाती। बाह्य जगत के समान मनुष्य का एक आत्मिक जगत भी है, जो कि ज्ञानके अभाव में वैसे ही तमसाच्छन्न रहता है जैसे आँखों के अभाव में यह संसार।

अन्धकार से प्रकाश और अज्ञान से ज्ञान की ओर जाने में मनुष्य का प्रमुख पुरुषार्थ माना गया है। जिस प्रकार आलस्यवश दीपक न जलाकर अन्धकार में पड़े रहने वाले व्यक्ति को मूर्ख कहा जायेगा उसी प्रकार प्रमादवश, अज्ञान दूर कर ज्ञान न पाने के लिये प्रयत्न न करने वाले को भी मूर्ख ही कहा जायेगा। भारतवर्ष की महिमामयी संस्कृति अपने अनुयायियों को विवेकशील बनने का संदेश देती है, मूढ़ अथवा अन्धविश्वासी नहीं।

ज्ञानवान् अथवा विवेकशील बनने के लिए मनुष्य को अपने मन-मस्तिष्क को साफ-सुथरा बनाना होगा, उसका परिष्कार करना होगा। जिस खेत में कङ्कड़, पत्थर तथा खर-पतवार भरा होगा उसमें अन्न की बाली कभी

भी अंकुरित नहीं हो सकते। वे तब ही अंकुरित होंगे जब खेत से झाड़-झंखाड़ और कूड़ा-करकट साफ करके दाने बोये जायेंगे। उसी प्रकार मनुष्य में ज्ञान के बीज तब तक जड़ नहीं पकड़ सकते जब तक कि मानसिक एवं नैतिक धरातल उपयुक्त न बना लिया जायेगा।

हमारे मन-मस्तिष्कों में इसी जन्म की ही नहीं, जन्म-जन्मान्तरों की विकृतियाँ भरी रहती हैं। न जाने कितने कुविचार, कुवृत्तियाँ एवं मान्यतायें हमारे मन-मस्तिष्क को घेरे रहती हैं। ज्ञान पाने अथवा विवेक जाग्रत करने के लिये आवश्यक है कि पहले हम अपने विचारों एवं संस्कारों को परिष्कृत करें। विचार एवं संस्कार परिष्करण के अभाव में ज्ञान के लिये की हुई साधना निष्फल ही चली जायेगी।

विचार-परिष्कार का अमोघ उपाय अध्ययन एवं सत्संग को ही बतलाया गया है। विचारों में संक्रमण एवं ग्रहणशीलता रहती है। जब मनुष्य अध्ययन में निरन्तर संलग्न रहता है तब उसको अपने विचारों द्वारा विद्वानों के विचारों के बीच से बार-बार गुजरना पड़ता है। पुस्तक में लिखे विचार अविचल एवं स्थिर होते हैं। उनके प्रभावित होने अथवा बदलने का प्रश्न ही नहीं उठता। स्वाभाविक है कि अध्ययनकर्ता के ही विचार, प्रभाव ग्रहण करते हैं। जिस प्रकार के विचारों की पुस्तक पढ़ी जायेगी अध्येता के विचार उसी प्रकार ढलने लगेंगे। इसलिये अध्ययन के साथ यह प्रतिबन्ध भी लगा दिया गया है कि अध्येता उन्हीं ग्रन्थों का अध्ययन करें जो प्रामाणिक एवं सुलझे हुए विचारों वाले हों। विचार परिष्कार अथवा ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से पढ़ने वालों को एक मात्र जीवन निर्माण सम्बन्धी साहित्य का ही अध्ययन करना चाहिये। उन्हें निठल्ले एवं निकम्मे लोगों की तरह निम्न मनोरथ वाले उपन्यास, कहानी, नाटक तथा कविता आदि नहीं पढ़ना चाहिए। अश्लील, अनैतिक, वासनापूर्ण अथवा जासूसी आदि से भरे उपन्यास पढ़ने से लाभ तो कुछ नहीं ही होता है उल्टे बहुत अधिक हानि ही होगी। अयुक्त साहित्य पढ़ने से विचारों की वह थोड़ी-बहुत उदात्तता भी चली जायेगी, जो उनमें रही होगी। अध्ययन का तात्पर्य सत्यं, शिव एवं सुन्दर साहित्य पढ़ने

से है। सद्विचारों तथा सदुद्देश्य से पूर्ण साहित्य ही पढ़ने योग्य होता है। वेद, शास्त्र, गीता, उपनिषद् आध्यात्मिक एवं धार्मिक साहित्य ही ऐसा साहित्य हो सकता है जो अध्ययन के प्रयोजन को पूरा कर सकता है। इसके विपरीत अनुपयुक्त एवं अ॰ाञ्छनीय साहित्य का पठन-पाठन विचारों को इस सीमा तक दूषित कर देगा कि फिर उनका पूर्ण परिष्कार एक समस्या बन जायेगा। आत्मोद्धारक ज्ञान प्राप्त करने के जिज्ञासु व्यक्तियों को तो सत्साहित्य के सिवाय अवांछनीय साहित्य को हाथ भी न लगाना चाहिए। सच्ची बात तो यह है कि अयुक्त अवांछनीय एवं निम्न मनोरंजनार्थ किये गये 'लिपि-लेखन' को साहित्य कहा ही नहीं जाना चाहिए। यह तो साहित्य के नाम पर लिखा गया कूड़ा-करकट होता है, जिसे समाज के हित-अहित से मतलब न रखने वाले कुछ स्वार्थी लेखक उसी प्रकार लिखकर पैसा कमाते हैं जिस प्रकार कोई भ्रष्टाचारी खाने-पीने की चीजों में अवांछनीय चीजें मिलाकर लाभ कमाते हैं। व्याव-सायिक भ्रष्टाचारी जहाँ राष्ट्र का शारीरिक स्वास्थ्य नष्ट करते हैं वहाँ अशिव लेखक राष्ट्र का मानसिक, बौद्धिक तथा आत्मिक स्वास्थ्य नष्ट करते हैं। मनुष्य की चारित्रिक अथवा आध्यात्मिक क्षति शारीरिक क्षति की अपेक्षा कहीं अधिक भयंकर एवं असहनीय होती है।

सत्सङ्ग से भी इसी उद्देश्य की पूर्ति होती है जो अध्ययन से। विद्वान् एवं सन्तजनों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आने से उनको सुनने तथा समझने एवं अनु-करण करने का अवसर मिलता है जिससे विचार-परिष्कार की प्रक्रिया और शीघ्र प्रारम्भ हो जाती है। किन्तु आज के समय में प्रामाणिक एवं श्रेष्ठ सत-पुरुषों का अभाव ही दीखता है। ऐसे महामानव मिलना सहज नहीं, जिनके विचार तेजस्वी एवं सार्थक हों, जिनका व्यक्तित्व निष्कलङ्क और आचरण आदर्श पूर्ण हो। हाँ, बकने-झकने और प्रवचन करने वाले विद्वान् जगह-जगह मिल जायेंगे जिनके कथन में न तो कोई सत्य अथवा सार होगा और जो बिना सिर-पैर के उपदेशों से जनता को पथ-भ्रान्त करके अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। ऐसे तथाकथित सन्तों के समागम से तो लाभ के स्थान पर हानि ही अधिक हो सकती है।

कहीं-किन्हीं दूर प्रदेशों में कोई सच्चे सन्तजन रहते भी हों जो सद्ज्ञान एवं जीवन-निर्माण की सही शिक्षा दे सकते हों—तो सबका जल्दी-जल्दी उनके पास पहुँच सकना सम्भव नहीं। आज के व्यस्त एवं विपन्न जीवन में इतना धन एवं समय किसके पास हो सकता है जो दूरस्थ महापुरुषों के पास जाकर काफी समय तक रह सके और सत्सङ्ग का लाभ उठा सकें। साथ ही सच्चे सत्पुरुषों के पास स्वयं भी इतना समय नहीं होता कि वे आत्म-कल्याण की साधना को सर्वथा त्यागकर आगन्तुकों को सारा समय दे सकें। इस प्रकार साधारण सत्सङ्ग की सम्भावनायें एवं अवसर आज नहीं के बराबर ही रह गये हैं।

मनुष्य के लिये विचार-परिष्कार एवं ज्ञानोपार्जन के लिए यदि कोई मार्ग रह जाता है तो वह अध्ययन ही है। पुस्तकों के माध्यम से किसी भी सत्पुरुष, विद्वान् अथवा महापुरुष के विचारों के सम्पर्क में आया और लाभ उठाया जा सकता है। सत्सङ्ग का तात्पर्य वस्तुतः विचार-सम्पर्क है जो उसको पुस्तकों से सहज ही प्राप्त किया जा सकता है।

जीवन का अन्धकार दूर करना और प्रकाशपूर्ण स्थिति पाकर निर्द्वन्द्व एवं निर्भय रहना यदि वाञ्छित है तो समयानुसार अध्ययन में निमग्न रहना भी नितान्त आवश्यक है। अध्ययन के बिना विचार परिष्कार नहीं, विचार परिष्कार के बिना ज्ञान नहीं। जहाँ ज्ञान नहीं वहाँ अन्धकार होना स्वाभाविक ही है और अँधेरा जीवन शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक तीनों प्रकार के भयों को उत्पन्न करने वाला है जिससे अज्ञानी न केवल इस जन्म में ही बल्कि जन्म-जन्मान्तरों तक, जब तक कि वह ज्ञान का आलोक नहीं पा लेता त्रिविध तापों की यातना सहता रहेगा। जीवनोद्धार के उपायों में विचार शोध होना आवश्यक है ज्ञान-विचार, शीलता का उपगम है। आत्मवान् व्यक्ति को इसे ग्रहण कर जीवित अज्ञान-यातना से मुक्त होना ही चाहिये।

सद्ज्ञान का संचय एवं प्रसार आवश्यक है

भारत की जनता स्वभावतः धर्मप्राण जनता है। धर्म के प्रति जितनी आस्था भारतवासियों में पाई जाती है उतनी कदाचित् ही किसी अन्य देश की

जनता में पाई जाती हो । भारत एक आध्यात्मिक देश है । यहाँ के अधिकांश वासियों में आध्यात्मिक प्रवृत्तियाँ न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान पाई जाती हैं । इसका कारण यही है कि आदि काल से ही भारत के ऋषियों, मुनियों एवं मनीषियों ने जनता में धर्म के बीज बोने के सतत प्रयत्न किये हैं । उन्होंने धर्म के तत्व, महत्व तथा जीवन पर उसके सत्प्रभाव का मूल्य समझा और यह भी जाना कि धर्म की पृष्ठभूमि पर विकसित किया हुआ जीवन ही वह जीवन हो सकता है जिसे यथार्थ रूप में जीवन कहा जा सकता है और जिसको उपलब्ध करना मनुष्य के लिए वांछनीय होकर उसका लक्ष्य भी होना चाहिए ।

भारतवासियों में आध्यात्मिक जिज्ञासा संस्कार रूप में विद्यमान है । हर व्यक्ति किसी-न-किसी रूप में आध्यात्मिक प्रगति करने को उत्सुक रहा करता है और जिस उपलब्ध स्रोत अथवा सूत्र से वह जितना ज्ञान प्राप्त कर सकता है करने का प्रयत्न करता है । किन्तु खेद है कि जनसाधारण अपनी इस जिज्ञासा पूर्ति में असफल ही नहीं हो रहे हैं बल्कि पथभ्रष्ट होकर अज्ञान के अन्धकार में भटक रहे हैं ।

अनेक लोगों ने जनसाधारण की इस लालसा को समझा और धर्म के प्रति उनकी अडिग आस्था का भी आभास पा लिया । फलस्वरूप अपना स्वार्थ सिद्ध करने तथा जनता की भक्ति-भावना द्वारा प्रतिष्ठित होने के लिए उन्होंने आडम्बर धारण कर धर्म गुरुओं का रूप बना लिया और धर्म अथवा अध्यात्म-ज्ञान के नाम पर जनता को भ्रमित करते हुए भटकाने और अपना उल्लू सीधा करने में लग गये । निदान ज्ञान के नाम पर समाज में अज्ञान का अन्धकार इतना घनीभूत हो उठा है कि धर्म का सच्चा स्वरूप समझ सकना दुरूह हो गया है । आज इस बात की नितान्त आवश्यकता आ पड़ी है कि समाज में इस प्रकार फैलाये गये अज्ञानान्धकार के विरुद्ध अभियान चलाये जायें और शुद्ध एवं सद्ज्ञान का प्रकाश प्रसारित करके अज्ञान रूपी अन्धकार को निर्मूल कर दिया जाये । यह एक बड़ा काम है । किसी एक, दो या दस-बीस अथवा सौ-पचास व्यक्तियों द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता । इसके लिये तो प्रत्येक समझदार सत्पुरुष को अपना योगदान करना होगा । अज्ञान के फलाव में फँसी

जनता का उद्धार करना सर्वोपरि सत्कर्म है, जिसे पूरा करने के लिए अध्यात्मवादी धर्मनिष्ठों को आगे आना ही चाहिए।

ज्ञान ही आध्यात्मिक जीवन की आधार शिला है। ज्ञान के अभाव में आत्मिक उन्नति असम्भव है। ज्ञान रहित मनुष्य अन्य पशुओं की तरह ही मूर्ख प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर अपना जीवनयापन किया करता है और उन्हीं की तरह हाँके जाकर किसी ओर भी चल सकता है। अज्ञानी व्यक्ति में अपनी सूझ-बूझ नहीं होती और न वह जीवन प्रगति की किसी भी दिशा में विचार ही कर पाता है। ज्ञान के आधार पर ही मनुष्य अपने भीतर छिपी ईश्वरीय शक्ति का परिचय पा सकता है और उसी के बल पर उन्हें प्रबुद्ध कर आत्म-कल्याण की दिशा में नियोजित कर पाता है। अज्ञानी व्यक्ति की सारी शक्तियाँ उसके भीतर निरुपयोगी बनी बन्द रहती हैं और शीघ्र ही कुण्ठित होकर नष्ट हो जाती हैं। जिन शक्तियों के बल पर मनुष्य संसार में एक-से-एक ऊँचा कार्य कर सकता है, बड़े-से-बड़ा पुण्य-परमार्थ सम्पादित करके अपनी आत्मा को भव-बंधन से मुक्त करके मुक्ति, मोक्ष जैसा परम पद प्राप्त कर सकता है, उन शक्तियों का इस प्रकार नष्ट हो जाना मानव-जीवन की सबसे बड़ी क्षति है। इस क्षति का दुर्भाग्य केवल इसलिए सहन करता है कि वह ज्ञानार्जन करने में प्रमाद करता है अथवा अज्ञान के कारण धूर्तों के बहकावे में आकर सत्य-धर्म के मार्ग से भटक जाता है। मानव-जीवन को सार्थक बनाने, उसका पूरा-पूरा लाभ उठाने और आध्यात्मिक स्थिति पाने के लिए सद्ज्ञान के प्रति जिज्ञासु होना ही चाहिए और विधि पूर्वक जिस प्रकार भी हो सके उसकी प्राप्ति करनी चाहिए। जड़ता पूर्वक जीवन मृत्यु से भी बुरा है।

ज्ञान की जन्मदात्री, मनुष्य की विवेक बुद्धि को ही माना गया है और उसे ही सारी शक्तियों का स्रोत कहा गया है। जो मनुष्य अपनी बुद्धि का विकास अथवा परिष्कार नहीं करता अथवा अविवेक के वशीभूत होकर बुद्धि के विपरीत आचरण करता है वह आध्यात्मिकता के उच्च स्तर को पाना तो दूर साधारण मनुष्यता से भी गिर जाता है। उसकी प्रवृत्तियाँ अधो-

गामी एवं प्रतिगामिनी हो जाती है। वह एक जन्तु-जीवन जीता हुआ उन महान सुखों से वंचित रह जाता है जो मानवीय मूल्यों को समझने और आदर करने से मिला करते हैं। निकृष्ट एवं अधो-जीवन से उठकर उच्चस्तरीय आध्यात्मिक जीवन की ओर गतिमान होने के लिये मनुष्य को अपनी विवेक बुद्धि का विकास, पालन तथा सम्वर्धन करना चाहिए। अन्य जीव-जन्तुओं की तरह प्राकृतिक प्रेरणाओं से परिचालित होकर लक्ष्यहीन जीवन बिताते रहना मानवता का अनादर है, उस परमपिता परमात्मा का विरोध है जिसने मनुष्य को ऊर्ध्वगामी बनने के लिये आवश्यक क्षमता का अनुग्रह किया है।

आध्यात्मिक ज्ञान सिद्ध करने में बुद्धि ही आवश्यक तत्व है। इसके संशोधन, संवर्धन एवं परिमार्जन के लिए विचारों को ठीक दिशा में प्रचलित करना होगा। विचार प्रक्रिया से ही बुद्धि का प्रबोधन एवं शोधन होता है। जिसके विचार अधोगामी अथवा निम्न स्तरीय होते हैं, उसका बौद्धिक पतन निश्चित ही है। विचारों का पतन होते ही मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन दूषित हो जाता है। फिर वह न तो किसी मांगलिक दिशा में सोच पाता है और न उस ओर उन्मुख ही हो पाता है। अनायास ही वह गर्हित गर्त में गिरता हुआ अपने जीवन को अधिकाधिक नारकीय बनाता चला जाता है। पतित विचारों वाला व्यक्ति इतना अशक्त एवं असमर्थ हो जाता है कि अपने फिसलते पैरों को स्थिर कर सकना उसके वश की बात नहीं रहती।

समग्रभूत आध्यात्मिक जीवन प्राप्त करने का यथार्थ अर्थ विचारों का उपयुक्त दिशा में विकसित करना ही है। विचारों के अनुरूप ही मनुष्य का जीवन निर्मित होता है। यदि विचार उदात्त एवं ऊर्ध्वगामी हैं तो निश्चय ही मनुष्य निम्न परिधियों को पार करता हुआ ऊपर उठता जायेगा और उस सुख-शान्ति का अनुभावक बनेगा जो उस आत्मिक ऊंचाई पर स्वतः ही अभिसार किया करती है। स्वर्ग-नरक किसी अज्ञात क्षितिज पर बसी बस्तियां नहीं हैं। इनका निवास मनुष्य के विचारों में ही होता है। सद्विचार स्वर्ग और असद्विचार नरक का रूप धारण कर लिया करते हैं।

विचारों का विकास एवं उनकी निर्विकारता दो बातों पर निर्भर

है—सत्सङ्ग एवं स्वाध्याय। विचार बड़े ही संक्रामक, संवेदनशील तथा प्रभाव-ग्राही होते हैं। जिस प्रकार के व्यक्तियों के संसर्ग में रहा जाता है मनुष्य के विचार भी उसी प्रकार के बन जाते हैं। व्यवसायी व्यक्तियों के बीच रहने, उठने-बैठने, उनका सत्सङ्ग करने से ही विचार व्यावसायिक, दुष्ट तथा दुरा-चारियों की सङ्गत करने से कुटिल और कलुषित बन जाते हैं। उसी प्रकार चरित्रवान तथा उदात्माओं का सत्सङ्ग करने से मनुष्य के विचार महान् एवं सदाशयतापूर्ण बनते हैं।

किन्तु आज के युग में सन्त पुरुषों का समागम दुर्लभ है। न जाने कितने धूर्त तथा मक्कार व्यक्ति वाणी एवं वेश से महात्मा बनकर ज्ञान के जिज्ञासु भोले और भले लोगों को प्रताड़ित करते घूमते हैं। किसी को आज वाणी अथवा वेश के आधार पर विद्वान् अथवा विचारवान मान लेना निरापद नहीं है। आज मन-वचन-कर्म से सच्चे और असंदिग्ध ज्ञान वाले महात्माओं का मिलना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। सत्सङ्ग के लिए तो ऐसे पूर्ण विद्वानों की आवश्यकता है जो हमारे विचारों को ठीक दिशा दे सकें और आत्मा में आध्यात्मिक प्रकाश एवं प्रेरणा भर सकें। वक्तृता के बल पर मन-चाही दिशा में भ्रमित कर देने वाले वाक्वीरों से सत्सङ्ग का प्रयोजन सिद्ध न हो सकेगा।

ऐसे प्रामाणिक प्रेरणा-पुंज व्यक्तित्व आज के युग में विरल हैं। जो हैं भी उनकी खोज तथा परख करने के लिये आज के व्यस्त समय में किसी के पास पर्याप्त समय तथा बुद्धि नहीं है। जो प्रेरणा एवं प्रकाशदायक प्रज्ञापात्र विदित भी हैं उनका लाभ तो वे ही भाग्यवान उठा सकते हैं जो सन्निकट रहते हैं। दूर-दूर के लोग उनके पास न तो आसानी से रह सकते हैं और न पूर्ण प्रकाश पाने तक समय ही दे सकते हैं। इन सब कठिनाइयों तथा असुविधाओं के कारण विद्वानों का साक्षात् सत्सङ्ग असम्भव-सा हो गया है। इसलिये ज्ञान के उत्सुक लोगों के लिये स्वाध्याय का ही एक ऐसा माध्यम रह गया है जिसके द्वारा वे सत्सङ्ग से अपेक्षित लाभ पुस्तकों से प्राप्त कर सकते हैं।

पुस्तकें क्या हैं ? विद्वानों के 'विचार-शरीर' ही तो हैं। सत्सङ्ग का प्रयोजन भी तो विचारों का श्रवण, मनन तथा ग्रहण ही है। विद्वानों तथा महापुरुषों के जो विचार उनके मुख से सुने जा सकते हैं, वे उनकी लिखी पुस्तकों से आँखों द्वारा पढ़े जा सकते हैं। एक बार बौद्धिक सत्सङ्ग में, विचार अस्त-व्यस्त भी हो सकते हैं। किन्तु पुस्तकों में संचित विचार व्यवस्थित तथा स्थिर होते हैं। ग्रन्थकर्ता अपनी पुस्तक में ज्ञान की परिपक्वता से ओत-प्रोत विचार ही अंकित किया करता है। स्वाध्यायरूपी सत्सङ्ग द्वारा कोई भी व्यक्ति उन विद्वानों का विचार-सङ्ग किसी समय भी, किसी स्थान पर प्राप्त कर सकता है, जो आज संसार में नहीं हैं अथवा जो सुदूर देशान्तर में रह रहे हैं। परिचित भाषा ही नहीं अनुवादों द्वारा अपरिचित भाषाओं के विद्वानों के विचार-संग में भी आया जा सकता सकता है। पुस्तकों के माध्यम से प्रामाणिक विद्वानों का सत्सङ्ग विचार विकास के लिये सबसे अधिक उपयोगी, सरल तथा निरापद है।

जहाँ यह आवश्यक है कि मनुष्य स्वयं स्वाध्यायशील बने उसके लिये प्रेरणा-दायक पुस्तकें संचय करे और नित्यप्रति उनका परायण करता रहकर अपनी बुद्धि, विवेक तथा ज्ञान को विकसित करता रहे, वहाँ यह भी आवश्यक है कि स्वाध्याय की प्रेरणा दूसरे लोगों में भी भरे। किसी समाज में रहते हुए मनुष्य का स्वयं अपने लिये सुखी, साधन-सम्पन्न अथवा ज्ञानवान बनना कोई अर्थ नहीं रखता, फिर भारतीय समाज में रहते हुए—जिसमें आज अज्ञान का भयानक अन्धकार फैला हुआ है, धर्म के नाम पर न जाने कितने ढोंग जनता को पथ-भ्रष्ट करने में जुटे हुए हैं।

आज हम में से प्रत्येक शिक्षित भारतीय का पुनीत कर्तव्य है कि वह स्वाध्याय द्वारा स्वयं तो ज्ञान का प्रकाश प्राप्त ही करे साथ ही यथासाध्य अपनी परिधि में निवास करने वाले लोगों को भी प्रकाश एवं प्रेरणा दें। आज के युग का यह सबसे बड़ा पुण्य-परमार्थ है। यों भी ज्ञान पाना और उस ज्ञान से अन्यों में ज्ञान-प्राप्ति की प्रेरणा भरना पुण्य कर्म ही कहा गया है, तब आज की भारत स्थिति में तो यह सर्वोपरि पुण्य कर्म बताया गया है।

विचार शक्ति का जीवनोद्देश्य की प्राप्ति में उपयोग

मनुष्यों और पशु-पक्षियों की तुलना करते हुये शास्त्रकार ने लिखा है—"ज्ञानं हि तेषामधिको विशेषः ।" अर्थात् आहार-विहार, भय, निद्रा, कामेच्छा की दृष्टि से मनुष्य और पशु में कोई विशेष अन्तर नहीं पाया जाता । शारीरिक बनावट में भी कोई बड़ी असमानता दिखाई नहीं पड़ती । खाने-पीने, चलने, उठने, बैठने, बोलने, मल-मूत्र त्याग के सभी साधन पशु और मनुष्यों को प्रायः एक जैसे ही मिले हैं । पर मनुष्य में कुछ विशेषतायें इन प्राणियों से भिन्न हैं । उसकी रहन-सहन की रुचि, उचित-अनुचित का ज्ञान, भाषा-भाव आदि कितनी ही विशेषतायें यह सोचने को विवश करती हैं कि वह इस सृष्टि का श्रेष्ठ प्राणी है । उसकी रचना किसी उद्देश्य पर आधारित है । साधारण तौर पर शरीर यात्रा चलाने और मन को प्रसन्न करने की क्रिया पशु भी करते हैं किन्तु इसके पीछे उनका कोई विधिवत् विचार नहीं होता । यह कार्य वे अपनी अन्तः प्रेरणा से किया करते हैं । उनके जीवन में जो अस्त-व्यस्तता दिखाई देती है उससे प्रकट होता है कि उन्हें उचित अनुचित का ज्ञान नहीं होता ।

मनुष्य का प्रत्येक कार्य विचारों से प्रेरित होता है । यह भी कहा जा सकता है कि मनुष्य को विचार शक्ति इसलिये मिली है कि उचित अनुचित को ध्यान में रखकर वह सृष्टि संचालन की नियमित व्यवस्था बनाये रखने में प्रकृति को सहयोग देता रहे । जो केवल खाने-पीने और मौज उड़ाने की ही बात सोचते हैं इसी को जीवन का श्रेय मानते हैं उनमें और मनुष्येतर पशुओं-पक्षियों और कीट-पतंगों में अन्तर कहाँ रहा ? यह क्रियायें तो पशु भी कर लेते हैं ।

विचार-बल संसार का सर्व श्रेष्ठ बल है । विचार शक्ति का सूचक है । पशु निर्विचार होते हैं इसलिये वे परस्पर अपनी भावनाओं का आदान-प्रदान नहीं कर सकते उनकी कोई लिपि नहीं, भाषा नहीं । किसी प्रकार का सङ्गठन बनाकर अपने प्रति किये जा रहे, अत्याचारों का वे प्रतिवाद नहीं कर सकते ।

इसीलिये शारीरिक शक्ति में मनुष्य से अधिक सक्षम होते हुए भी वे पराधीन हैं। विचार शक्ति के अभाव में उनका जीवन-क्रम एक बहुत छोटी सीमा में अवरुद्ध बना पड़ा रहता है।

विशृङ्खलित, ऊबड़-खाबड़ धरती को क्रमबद्ध व सुसज्जित रूप देने का श्रेय मनुष्य को है। घर, गाँव, शहर, देश आदि की रचना सुविधा और व्यवस्था की दृष्टि से कितनी अनुकूल है। अपनी इच्छायें, भावनायें दूसरों से प्रकट करने के लिये भाषा-साहित्य और लिपि की महत्ता किससे छिपी है। आध्यात्मिक अभिव्यक्ति और सांसारिक आह्लाद प्राप्त करने के लिए कला-कौशल, लेखन, प्रकाशन की कितनी सुविधायें आज उपलब्ध हैं। यह सब मनुष्य की विचार शक्ति का परिणाम है। मनुष्य को ज्ञान न मिला होता तो वह भी रीछ, बन्दरों की तरह जङ्गलों में घूम रहा होता। सृष्टि को सुन्दर रूप मिला है तो यह मनुष्य की विचार शक्ति का ही प्रतिफल है। विचारों का उपयोग निःसन्देह अनुपम है।

विचारों की विशिष्ट शक्ति का स्वामी होते हुए भी मनुष्य का जीवन निरुद्देश्य दिखाई दे तो इसे दुर्भाग्य ही कहा जायगा। जिसके कामों में कोई सूझ न हो, निश्चित आधार न हो उस जीवन को पशु-जीवन कहें तो इसमें अतिशयोक्ति क्या है। हवाई जहाज निराधार आकाश में उड़ता है, अभीष्ट स्थान तक पहुँचने का उसे निर्देश न मिलता रहे तो वह कहीं से कहीं भटक जायेगा। कुतुबनुमा की सुई वायुयान चालक को बताती रहती है कि उसे किस दिशा में चलना है। इस निर्देश के आधार पर ही वह सैकड़ों मील का रास्ता पार कर लेता है। प्रत्येक प्राकृतिक पदार्थ किसी उद्देश्य से निर्मित है। सूर्य प्रतिदिन आसमान में आता है और लोगों को प्रकाश, गर्मी और जीवन देने का अपना लक्ष्य पूरा करता रहता है। वृक्ष, वनस्पति, वायु-जल, समुद्र, नदियाँ सभी किसी न किसी लक्ष्य को लेकर चल रहे हैं। इस संसार में यह व्यवस्था तभी तक है जब तक प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक पदार्थ अपनी अवस्था के अनुसार अपने कर्त्तव्य कर्म पर स्थिर है।

मानव-जीवन की महत्ता इस पर है कि हम वर्तमान साधनों का उपयोग आत्मदर्शन या आत्मज्ञान प्राप्ति के लिए करें। उद्देश्य का मार्ग प्रायः किसी विशिष्ट दिशा की ओर ही होता है। प्रकृति जिस ओर ले जाना चाहे उधर ही चलते रहें तो इन प्राप्त शक्तियों की सार्थकता कहाँ रही? जैसा जीवन दूसरे प्राणी जीते हैं वैसा ही हम भी जियें तो विचारशीलता का महत्व क्या रहा? बुद्धि की सूक्ष्मता, आध्यात्मिक अनुभूतियाँ, विराट् की कल्पना आदि ठीक वायुयान का मार्ग-दर्शन करने वाले कुतुबनुमा की सुई के समान हैं, जिससे मनुष्य चाहे तो अपना उद्देश्य पूरा करने का निर्देशन प्राप्त कर सकता है। उद्देश्य कभी श्रमहीन और मात्र सांसारिक नहीं हो सकते। जिन साधनों से इहलौकिक रसानुभूति मिलती है वे केवल मानव-जीवन की सरसता और श्रेष्ठता को कायम रखने के अतिरिक्त और कुछ अधिक नहीं होते। इन्हीं के पीछे पड़े रहें तो अपना वास्तविक लक्ष्य—जीवन लक्ष्य—पूरा न हो सकेगा।

यदि यह विचार बना लिया कि हमारा उद्देश्य जीवन मुक्ति है तो अभी से इसकी पूर्ति में लग जाइये। एक बार लक्ष्य निर्धारित कर लेने के बाद अपनी सम्पूर्ण चेष्टाओं को उसमें जुटा दीजिये। अपने धैर्य से विचलित न हों, जो राह पकड़ी है उस पर दृढ़ता पूर्वक चलते रहें। फिर देखें कि आप कितनी शीघ्रता से अपना जीवन-लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं।

"न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः।" अर्थात्—महापुरुषों का यह प्रधान सद्गुण है कि वे अपने जीवन उद्देश्य से कभी डिगते नहीं। महापुरुषों के जीवन में उद्देश्य की एकता और तल्लीनता, लगन और तत्परता इस ऊँचे दर्जे तक पाई जाती है कि वह पाठक के अन्तस्तल को झकझोरे बिना मानती नहीं। आपकी महानता की कसौटी भी इसमें है कि आप अपने लक्ष्य के प्रति कितने आस्थावान हैं? उसकी पूर्ति के लिये आप कितना त्याग और बलिदान करते हैं?

उद्देश्य बना लेना ही पर्याप्त नहीं हो सकता। यह भी परखना पड़ेगा कि आपका ध्येय कितना मूल्यवान है। उद्देश्य उच्च न हुआ तो परिस्थिति

बदलते ही उस विचारणा का बदल जाना भी सम्भव है। असाधारण लक्ष्यों में ही यह शक्ति होती है, जो मनुष्य को निरन्तर प्रेरणा देते रहें और उसे उत्साह से ओत-प्रोत रखती रहे। मंजिल तक पहुँचने में जो बाधाएँ आती हैं उनसे संघर्ष करने और धैर्य पूर्वक अन्त तक डटे रहने की क्षमता लक्ष्य की उत्कृष्टता से ही सम्भव होती है।

आत्म-कल्याण के उद्देश्य की पूर्ति के लिए उच्च गुणों की आवश्यकता पड़ती है। बहुतेरे कष्ट उठाने होते हैं, अपने को संकट में डालना पड़ता है। यह बात सच है कि कष्ट सहन करते-करते असाधारण सहिष्णुता उत्पन्न हो जाती है किन्तु प्रारम्भ में मानवोचित साहस का परिचय तो देना ही पड़ता है। लोभ, मोह, मद, मत्सर, काम और क्रोध के प्रबल मनोविकार भी अपना हथियार चलाने से बाज नहीं आते। इन सब आघातों को धैर्य पूर्वक, ध्येय सिद्धि तक सहन करना पड़ता है। जो इस निश्चय में दृढ़ हो जाता है। "देहं वा पातयेत् कार्यं वा साधयेत्" अर्थात् सिद्धि या मृत्यु ही जिनका सिद्धान्त बन जाता है वे ही अन्त तक लक्ष्य प्राप्ति के दुर्गम पथ पर टिके रहते हैं। ऐसे लोगों को ही सफलता के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

इसमें सन्देह नहीं है कि जीवन लक्ष्य प्राप्ति कठिन प्रक्रिया है किन्तु इस प्रकार उद्देश्य-संरक्षण से ही मनुष्य का नैतिक विकास होता है। जो अपने शरीर और मन को कष्ट पूर्ण कसौटी में भली-भाँति कस लेते हैं, उन्हीं का चरित्र उज्ज्वल बनता है। नैतिक विकास और चारित्रिक सङ्गठन ही अध्यात्म का विशुद्ध उद्देश्य है। विकारों को दूर करना और सद्गुणों का अभिवर्द्धन ही धर्म है। इसलिए आध्यात्मिक, धार्मिक एवं नैतिक विकास के साधकों को सर्व प्रथम अपना जीवन-लक्ष्य निर्धारित करना चाहिये। उद्देश्य की आँच पर तपाई हुई आत्मायें ही संसार का कुछ कल्याण कर सकती हैं। 'उद्देश्य हीना पशुभिः समानाः' अर्थात्—जिनके जीवन का कोई उद्देश्य नहीं उनमें और पशुओं में कोई अन्तर नहीं होता।

युग परिवर्तन के लिये विचार-क्रान्ति

एक समय था जब अवांछनीय व्यक्तियों या तत्वों को हटाने के लिए

प्रधानतया शस्त्रबल से ही काम लिया जाता था। तब विचार-शक्ति की व्यापकता का क्षेत्र खुला न था। यातायात के साधन, शिक्षा, साहित्य, ध्वनि-विस्तारक यन्त्र, प्रेस आदि की सुविधायें उन दिनों न थीं और बहुसंख्यक जनता को एक दिशा में सोचने, कुछ करने या संगठित करने के लिए उपयुक्त साधन भी न थे। इस लिए संसार में जब भी अनाचार, पाप, अनौचित्य फैलता था तब उसके निवारण के लिये उस अनौचित्य के केन्द्र बने हुए व्यक्तियों की शक्ति को युद्ध द्वारा—शस्त्रबल से निरस्त किया जाता था। प्राचीन काल में युग-परिवर्तन की यही भूमिका रही है।

रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद, खरदूषण, कंस, जरासिन्ध, दुर्योधन, वेन, हिरण्यकश्यप, महिषासुर, वृत्रासुर, सहस्रबाहु आदि अनीतिमूलक वातावरण उत्पन्न करने वाले व्यक्तियों की शक्ति निरस्त करने के लिए जिन्होंने सशस्त्र आयोजन किये, परास्त किया, उन महामानवों को युग-परिवर्तन का श्रेय मिला। उन्हें अवतार, देवदूत आदि के सम्मानों से सम्मानित किया गया। भगवान राम, भगवान कृष्ण, भगवान परशुराम, भगवान नृसिंह आदि को इसी सन्दर्भ में सम्मानपूर्वक पूजा सराहा जाता है।

पिछले दो सौ वर्षों में विज्ञान ने अद्भुत प्रगति की है। संसार की समस्याओं को नया स्वरूप दे दिया। संसार के सुदूरवर्ती देश अब यातायात की सुविधा के कारण गली-मुहल्लों की तरह अत्यन्त निकट आ गये। तार और डाक ने जानकारियों का आदान-प्रदान सुलभ बना दिया। प्रेस, अखबार और रेडियो ने ज्ञानवर्धन की अनुपम सुविधायें प्रस्तुत कर दीं। संसार की अनेक सभ्यताओं और विचारधाराओं ने एक दूसरे को प्रभावित करना आरम्भ कर दिया। साथ ही ऐसे-ऐसे दूर-मार करने वाले शस्त्रों का आविष्कार आरम्भ कर दिया जिससे युद्ध केवल दो ही देशों के बीच सम्भव न रह गया। व्यक्तिगत लड़ाइयाँ तो सरकारी कानून के अन्तर्गत असंभव हो गईं। आज किसी देश का प्रधान मन्त्री भी बिना न्यायालय की आज्ञा के किसी का वध कर डाले तो उसे फांसी पर ही चढ़ना पड़ेगा।

इसी प्रकार युद्ध भी अब इतने मँहगे और जटिल हो गये, जिन्हें करने की हिम्मत सहसा पड़ती ही नहीं । पुराने जमाने में योद्धा लोग तलवार से एक दूसरे का सिर काट कर परस्पर निपट लेते थे । पर अब तो देश की समस्त जनता को प्रकारान्तर से अपने देश की युद्ध-व्यवस्था में भाग लेना पड़ता है । युद्ध के अस्त्र-शस्त्र तथा क्रियाकलाप भी इतने मँहगे हैं कि एक सैनिक को मारने में प्रायः हजारों रुपया खर्च पड़ जाता है । फिर विजय सैन्य सफलता में ही नहीं होती, उसके पीछे अन्तर्राष्ट्रीय गुटबन्दी और सहायतायें, सहानुभूतियाँ भी काम करती हैं । इस विज्ञान युग में पिछले दो युद्ध अनन्त संहारक साधनों से लड़े गये फिर भी उनसे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ । समस्यायें ज्यों-की-त्यों आज भी मौजूद हैं, जो इन युद्धों से पहले थीं और जिनके लिये ये युद्ध लड़े गए थे । तीसरा युद्ध तो और भी भयावह होगा । उसमें मर्ज और मरीज दोनों ही साथ-साथ समाप्त होंगे । अणु युद्ध में कोई देश किसी को नहीं जीतेगा वरन् संसार की सामूहिक आत्म-हत्या का ही दृश्य उपस्थित होगा ।

कहने का तात्पर्य इतना भर है कि प्राचीन काल में अनीति एवम् अनुपयुक्त परिस्थितियों के मूल कारण बने हुए कुछ व्यक्तियों को निरस्त कर देने से वातावरण बदल जाता था । पर अब वैज्ञानिक प्रगति ने इस सम्भावना को समाप्त कर दिया । पहले कुछ शक्तिशाली शासक ही भला-बुरा वातावरण बनाने के निमित्त होते थे । अब जनता के हर नागरिक को अपनी शक्तियाँ विकसित करने और उपयोग करने की ऐसी सुविधा मिल गई है कि वह स्वयं एक स्वतन्त्र इकाई के रूप में समाज पर भारी प्रभाव छोड़ता है ।

आज जो पाप, अनाचार, दम्भ, छल, असत्य, शोषण आदि दोषों का बाहुल्य होने से समाज में भारी अव्यवस्था उत्पन्न हो रही है, उसके लिए किन्हीं अमुक व्यक्तियों को दोषी ठहराने या उन्हें मार-काट देने से समस्या का हल नहीं हो सकता । अब विचार-परिवर्तन ही एकमात्र वह आधार रह गया है जिसके माध्यम से विभिन्न प्रकार के कष्टों का सृजन करने वाले

दुर्गुणों को निरस्त किया जा सके और न्याय तथा शांति की स्थापना की जा सके।

इस युग की सबसे बड़ी शक्ति शस्त्र नहीं रहे वरन् उनका स्थान विचारों ने ले लिया है। क्योंकि अब शक्ति जनता के हाथ में चली गई है। जन-मानस का प्रवाह जिस दिशा में बहता है, उसी तरह की परिस्थितियाँ बन जाती हैं। इस जन-प्रवाह को शस्त्रों से नहीं, विचारों से ही रोका जा सकता है। यह तनिक भी अत्युक्ति नहीं समझी जानी चाहिये कि अब शस्त्र-युद्ध का जमाना चला गया, आज तो विचार-युद्ध का युग है। जो विचार प्रबल होंगे वे ही अपने अनुकूल—अनुरूप परिस्थितियाँ उत्पन्न कर लेंगे।

इस तथ्य को और भी अच्छी तरह समझने के लिये पिछली दो शताब्दी की कुछ राज्यक्रान्तियों पर ध्यान देना होगा। कुछ शताब्दी पूर्व संसार भर में राजतन्त्र था। राजा शासन करते थे। उस पद्धति की अनुपयुक्तता रूसो आदि दार्शनिकों ने प्रतिपादित की और अपने ग्रन्थों में बताया कि राजतन्त्र के स्थान पर जनतन्त्र स्थापित किया जाये, उसका स्वरूप और प्रतिफल भी उन्होंने बताया। यह विचार जनमत को प्रिय लगा फलस्वरूप एक के बाद एक राजक्रान्ति होती चली गई। जनता विद्रोही बनी और राजतन्त्रों को उखाड़कर उनके स्थान पर प्रजातन्त्र स्थापित कर लिये। योरोप, अमेरिका, एशिया, अफ्रीका के अनेक देशों में एक के बाद एक प्रजातन्त्र का उदय होता चला गया। जनता ने सशक्त राजसत्ताओं को जिस बल-बूते पर पलट डालने में सफलता पाई वह उनकी विचारणा ही थी। प्रजातन्त्र की उपयुक्तता पर विश्वास करके साधारण लोगों ने राजतन्त्र उलट दिये, इसे विचार-शक्ति की विजय ही कहा जायेगा।

एक दूसरी राजनैतिक विचार-क्रान्ति पिछले ही दिनों हुई है। कार्ल-मार्क्स प्रभृति दार्शनिक ने बताया कि साम्यवादी सिद्धान्त ही जनता के कष्टों को दूर करके उसकी प्रगति का पथ प्रशस्त कर सकते हैं। उन्होंने साम्यवाद का स्वरूप, आधार और प्रयोग प्रस्तुत किये, जनता ने उसे समझा यह

विचारधारा लोकप्रिय हुई, विचारशील लोगों की दृष्टि में वह उपयुक्त जँची। फलस्वरूप उसका विस्तार होता चला गया। आज संसार की एक तिहाई से अधिक जनता इसी साम्यवादी शासन-पद्धति को अपना चुकी है और एक तिहाई जनता ऐसी है जो उसे विचारधारा से प्रभावित हो चली है। कोई युद्ध इतनी जनता को इतने कम समय में, इतनी सरलतापूर्वक किसी शासन के अन्तर्गत नहीं ला सकता था, जितनी इन विचार-क्रान्तियों के द्वारा सफलता उपलब्ध कर ली गई।

यह राजनैतिक क्रान्तियों की चर्चा हुई। दो धार्मिक क्रान्तियाँ भी गत सहस्राब्दियों में ऐसी ही हुई हैं, जिनकी सफलता शस्त्र-बल पर नहीं, विचार-बल पर ही अवलम्बित रही है। बुद्ध धर्म के प्रचारकों ने चलते बना कर एशिया के समस्त देशों में परिभ्रमण किया। फलस्वरूप एक सहस्राब्दी के अन्तर्गत उस समय की अधिकांश एशिया की जनता बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गई। कुछ समय पूर्व तक चीन, तिब्बत, जापान, इण्डोनेशिया जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, लङ्का आदि देश पूरी तरह बौद्ध थे। भारत के भी एक बड़े भाग में बौद्ध धर्म प्रचलित था। इस धार्मिक विजय का श्रेय बौद्ध दर्शन तथा उसकी प्रचार-पद्धति को ही दिया जा सकता है।

एक ऐसी ही विचार-क्रान्ति ईसाई प्रचारकों ने की है। आज दुनियाँ में लगभग एक अरब ईसाई हैं—एक अरब अर्थात् संसार की आबादी के एक तिहाई। संसार के तीन आदमियों में से एक ईसाई है। ईसाई धर्म का जन्म भी ईसा से आरम्भ हुआ पर उसे एक मजहब का रूप ईसा के कई सौ वर्ष बाद सेन्ट पाल ने दिया। मिशनरियों का प्रचार कार्य तो लगभग दो सौ वर्षों से ही आरम्भ हुआ है। इस थोड़ी ही अवधि में संसार के एक तिहाई भाग पर ईसाई संस्कृति का कब्जा होना, युद्ध के आधार पर नहीं—विचार-विस्तार प्रक्रिया द्वारा ही सम्भव हुआ है। राजनैतिक दृष्टि से ईसाई धर्म ने जो अनुपम प्रगति की है, इसका श्रेय उन विचार-पद्धतियों को जनता के सामने प्रभावशाली एवम् आकर्षक ढङ्ग से रखना ही तो है।

उपरोक्त तथ्यों पर यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाये तो इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि इस युग की सबसे बड़ी साधना विचार-शक्ति है। जन-मानस को प्रभावित कर वोट के बल से भारत में गत बीस साल से कांग्रेस शासन कर रही है। स्वाधीनता प्राप्त करने में हमारे नेताओं ने जनता के विचार-निर्माण करने से ही सफलता पाई। जन-मानस बदल जाये तो अपने देश का ही नहीं—किसी भी देश का शासन दूसरी पार्टी के हाथ में जा सकता है। जनता के विचार-प्रवाह की प्रचण्ड धारा किसी भी शासन को इधर से उधर उलट-पुलट कर सकती है। किसी शासन का जिक्र इसलिए किया जा रहा है कि वह आज सबसे बड़ी साधन-सम्पन्न संस्था समझी जाती है। इस संस्था के माध्यम से बहुत बड़ा काम हो सकता है। इतनी बड़ी केन्द्रित शक्ति होते हुए भी वस्तुतः कोई सरकार अब जन-मानस की अनुगामिनी एवम् दासी ही है। वास्तविक शक्ति तो इस युग में विचार-पद्धति की प्रखरता पर ही आधारित है। लोक-मानस जिस विचारधारा से प्रभावित होगा, वैसी ही परिस्थितियाँ उस समाज में विनिर्मित होने लगेंगी।

व्यक्ति और समाज के सम्मुख उपस्थित अगणित उलझनों और कठिनाइयों का समाधान करने, धरती पर स्वर्ग अवतरित करने एवं सतयुग वापिस लाने की आकांक्षा आज विश्व-मानव की अन्तरात्मा में हिलोरें ले रही है। यह आकांक्षा पूर्ण रूप कैसे धारण करेगी? इस प्रश्न का उत्तर एक ही हो सकता है—जन-मानस की दिशा पलट देने से। विचार-क्रान्ति वह प्रक्रिया है जिसके आधार पर जन-मानस की मान्यतायें एवं निष्ठाओं में हेर-फेर करके गतिविधियों एवं क्रिया-पद्धतियों को बदला जा सकता है। यह परिवर्तन जिस क्रिया से होगा, उसी क्रम से परिस्थिति भी बदलेगी। युग-परिवर्तन की मंजिल इसी मार्ग पर चलने से पूरी होगी।

इस निष्कर्ष पर पहुँचने में किसी को कठिनाई न होनी चाहिए कि मनुष्य जाति की व्यक्तिगत एवं सामाजिक वर्तमान कठिनाइयों का कारण उसकी विचारणाओं का स्तर गिर जाना ही है। असंयम ने हमारा स्वास्थ्य

खोखला कर दिया, अनुदारता ने पारिवारिक स्नेह-सौहार्द्र से रहित—विघटित बनाया। अपराधी मनोवृत्ति ने असुरता एवं अशांति का सृजन किया। हीनता ने हमारी प्रगति को रोका। क्षुद्रता के कारण हेय स्थितियों में पड़े रहे। अविनय ने हमें शत्रुता, विरोध, असहयोग एवम् तिरस्कार का भागी बनाया असन्तुलन ने मानसिक शक्ति नष्ट कर दी। व्यक्ति को जितने प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ रहा है, जितना अभाव और कष्ट सहना पड़ रहा है उसका प्रधान कारण व्यक्तित्व का स्तर गया-बीता होना ही है। यदि उसे सुधारा जा सके तो निस्सन्देह हर व्यक्ति सामान्य साधनों एवम् परिस्थितियों में स्वर्गीय आनन्द तथा उल्लास से भरा जीवन जी सकता है।

समाज के सामने जो समस्यायें हैं वे भी दुष्प्रवृत्तियों की सन्तानें हैं। आलस्य, सङ्कीर्णता, सामूहिकता का अभाव, नागरिक कर्त्तव्यों की उपेक्षा भीरुता जैसे सामाजिक दोष-दुर्गुणों ने खाद्यान्न की, मंहगाई की, बेकारी व बेरोजगारी की, गरीबी की अशिक्षा की, अपराधों की, समस्यायें उत्पन्न की हैं। यदि जातीय जीवन में परस्पर मिलजुल कर, एकता और आत्मीयता के आधार पर काम करने की लगन को स्थान मिल जाय, तो जो साधन आज अवाञ्छनीय कार्यों में खर्च हो रहे हैं वे ही सार्वजनिक विकास में प्रयुक्त होते दिखाई दें और विपन्नता सम्पन्नता में बदल जाय।

जनता विचार-रहित नहीं है, मनुष्य विवेक-शून्य नहीं हुआ है। यदि उसे तथ्य समझाये जाँय तो समझता, मानता और बदलता है। राजसत्ता और धर्म आस्था में आश्चर्यजनक हेर-फेर विचार क्रान्तियों द्वारा किस प्रकार सम्भव हो सके उसकी कुछ चर्चा ऊपर की पंक्तियों में की जा चुकी है। सांस्कृतिक नैतिक या आध्यात्मिक क्रांति को भी कुछ नाम दिया जाय उससे मानवीय अन्तःकरण को उत्कृष्ट स्तर की ओर अग्रसर करने की प्रक्रिया भी पूरी की जा सकती है। मनुष्य का वास्तविक चिरस्थायी एवं सर्वाङ्गीण हित-साधन इसी प्रकार होना है तो वस्तुस्थिति समझा दिये जाने पर जन-मानस उसे स्वीकार करेगा और अपनायेगा भी।

विचार क्रान्ति—जिसका अर्थ है मनुष्य के आस्था स्तर को निकृष्टता से विरत कर उत्कृष्टता की ओर अभिमुख करना—आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। विश्व-मानव उसी के लिए तड़प रहा है। युग की यही पुकार है। संसार का उज्ज्वल भविष्य इसी प्रक्रिया द्वारा सम्भव है। इतने आवश्यक एवम् महत्वपूर्ण प्रयोजन की पूर्ति के लिये हर प्रबुद्ध व्यक्ति को कुछ सोचना ही होगा, और करना ही होगा। अन्यमनस्क बैठे रहने से तो हम अपनी आत्मा के सामने कर्तव्यघात के अपराधी ही ठहरेंगे।

—ॐ—

मुद्रक—युग निर्माण प्रेस, गायत्री तपोभूमि, मथुरा।